योगविद्या

वर्ष 9 अंक 7
जुलाई 2020
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2020

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : गुरु पीठ, सत्यम् उद्यान, मुंगेर

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: स्वामी शिवानन्द सरस्वती; 2 & 3: गुरु पूर्णिमा 2020 मुंगेर, स्वामी शिवानन्द सरस्वती के प्रति श्रद्धांजलि; 4: स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

गुरु पूजा

गुरु की उपासना ही परमानन्द का मार्ग प्रशस्त करती है। इसलिए मन, कर्म और वचन से गुरु की उपासना और आराधना कीजिये। गुरु की आराधना का सर्वोत्तम उपाय क्या है? गुरु की स्तुति या सम्मान मात्र नहीं, बल्कि जिस उदात्त आदर्श को गुरु ने अपने जीवन और व्यवहार में सिद्ध किया है, उसी उज्ज्वल आदर्श और दिव्य संकल्प को चरितार्थ करने के लिए अनवरत संघर्ष करना और इस संघर्ष में अपना सर्वस्व तक न्यौछावर कर देना ही गुरु की सर्वोपरि पूजा और उपासना है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

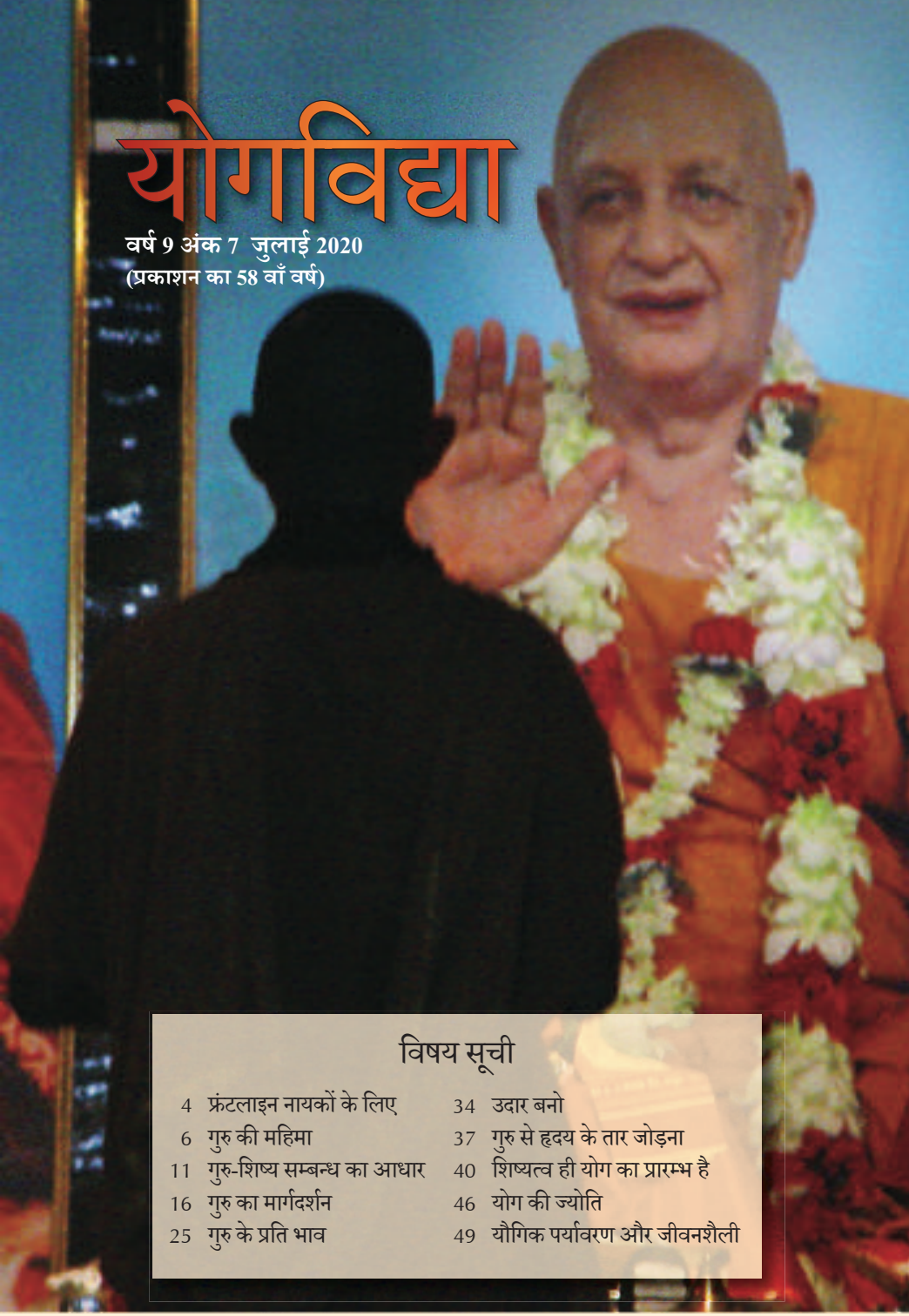

योगविद्या

वर्ष 9 अंक 7 जुलाई 2020
(प्रकाशन का 58 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 फ्रंटलाइन नायकों के लिए
6 गुरु की महिमा
11 गुरु-शिष्य सम्बन्ध का आधार
16 गुरु का मार्गदर्शन
25 गुरु के प्रति भाव
34 उदार बनो
37 गुरु से हृदय के तार जोड़ना
40 शिष्यत्व ही योग का प्रारम्भ है
46 योग की ज्योति
49 यौगिक पर्यावरण और जीवनशैली

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

फ्रंटलाइन नायकों के लिए

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

कोरोना वायरस से चल रही इस जंग में जहाँ अधिकांश लोग लॉकडाउन के तहत अपने घरों में सुरक्षित हैं, दुनियाभर में ऐसे भी हजारों लोग हैं जो देश और मानवता की सेवा में निरंतर कार्यरत हैं। जान जोखिम में डालकर ये समर्पित लोग सामने आए हैं और इस युद्ध में रक्षा की पहली पंक्ति बनकर खड़े हैं। ये योद्धा दो मोर्चों पर एक साथ लड़ रहे हैं, एक ओर तो महामारी के बाहरी प्रकोप के साथ, और साथ ही उस आंतरिक चिंता, भय और असुरक्षा के साथ जो अपने समुदाय-समाज से अलग होने पर और प्रबल हो जाता है। मानवता के कल्याण में लगातार संघर्ष कर रहे इन कर्मवीरों के निष्ठावान् प्रयासों पर ही आज मानवता का भविष्य निर्भर है।

डॉक्टर, नर्स, पुलिसकर्मी, केन्द्र तथा राज्य सरकारी विभाग के अधिकारी और कर्मचारी, मुनिसिपल कर्मचारी, विभिन्न कार्यकर्ता एवं स्वयंसेवक, किसान, व्यापारी, यहाँ तक कि अनाज-सब्जी जैसी आवश्यक चीजों को घर-घर पहुँचाने वाले रिक्शे और ठेले वाले भी आज अपने समाज की रक्षा की अग्रिम पंक्ति में खड़े हैं। आज का शूरवीर नायक वह नहीं जिसके पास चमत्कारी शक्तियाँ हों, बल्कि वह इंसान है जो अस्पतालों में सेवा देता है, लोगों को भोजन पहुँचाता है, बीमारों का इलाज करता है और विषम परिस्थितियों में भी दूसरों की सेवा में कोई कसर नहीं छोड़ता है।

इन कार्यकर्ताओं की नि:स्वार्थ सेवा के प्रति अपना सम्मान और कृतज्ञता अर्पित करते हुए बिहार योग विद्यालय, गंगा दर्शन विश्व योगपीठ एफ.एफ.एच. नामक एप्प के माध्यम से ऐसी योग चर्या को प्रस्तुत कर रहा है, जिसमें हर दिन आने वाली समस्याओं के प्रभावों से संघर्ष करने के लिए सरल योग विधियों का संकलन है। इनके अभ्यास से शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनाव को कम करने तथा विषम परिस्थितियों का शांत, स्पष्ट और सकारात्मक मन के साथ सामना करने में सहायता मिलेगी। सभी विधियाँ सरल हैं, कहीं और कभी भी इन्हें किया जा सकता है, और इन्हें करने में पन्द्रह मिनट से ज्यादा समय नहीं लगेगा।

एप्प उपलब्धि: *android उपकरणों के लिए*:
https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.android.ffh
iOS उपकरणों के लिए:
https://apps.apple.com/us/app/for-frontline-heros/id1508949961

एफ.एफ.एच. एप्प डाउनलोड: मई से जून 2020 तक

भारत
इटली
बल्गेरिया
संयुक्त राज्य अमेरिका
स्पेन
कोलम्बिया
ग्रीस
आयरलैण्ड
अर्जेन्टीना
उरुग्वे
इंग्लैण्ड
ऑस्ट्रेलिया
ब्राज़िल
जर्मनी
स्वीडन
नेपाल
सिंगापुर
हॉलैण्ड
फ्रांस
रोमानिया
न्यूज़ीलैण्ड
कनाडा
इस्राएल
क्रोएशिया
हंगरी
कज़ाकिस्तान
सर्बिया
युनाइटेड अरब एमीरेत्स
पेरु
स्लोवेनिया
कुवैत
दक्षिण अफ्रीका
बेल्जियम
यूक्रेन
पुर्तगाल
स्विट्ज़रलैण्ड
हौंग कौंग
थाईलैण्ड
ईरान
जापान
ऑस्ट्रिया
रूस
लेबनान
चीन
दक्षिण कोरिया
तुनीशिया
चिले
पनामा
तन्ज़ानिया
ओमान
इंडोनेशिया
कतर
कीनीया
श्री लंका
मेक्सिको
वेनेज़ुएला
नॉर्वे
डोमेनिकन रिपब्लिक
भूटान
बाहरेन
इराक
गुआतेमाला
ताइवान
तुर्की
मोरक्को
म्यानमार
पोलैण्ड
विएतनाम
फिनलैण्ड
लिथुएनिया
मिस्र
सऊदी अरब
क्यूबा
स्लोवाकिया
डेनमार्क
चेकिया
मलेशिया
बोत्सवाना
लक्सेमबर्ग
मौरिशस
कोस्टा रिका
जमाइका
उज़बेकिस्तान
बंगलादेश
साइप्रस
जौर्जिया
मालदीव्स
मौंटेनेग्रो
नाइजिरिया
उत्तर मारिआना आइलैण्ड्स
पोर्तो रिको
सेनेगल
सेंट किट्स एण्ड नेविस
बोस्निया और हर्ज़ेगोविना
फिलिपिन्स
अज़रबैजान

गुरु की महिमा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

गुरु आध्यात्मिक जीवन के मार्गदर्शक होते हैं। आध्यात्मिक राजमार्ग पर गुरु ही एकमात्र सहारा होते हैं। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हेतु गुरु का होना परमावश्यक है। शास्त्र-ज्ञान में निपुण होने के बावजूद भी आप गुरु की सहायता बिना आत्मज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। वेदों में कहा गया है, 'जिस व्यक्ति का गुरु है, वह ज्ञानी है।' जिसे गुरु प्राप्त हैं, वही ब्रह्म या परम सत्ता को जान सकता है। गुरु से प्राप्त ज्ञान ही पूर्ण ज्ञान होता है।

गुरु तीनों लोकों के प्रकाश-स्तम्भ हैं। वे ज्ञान की जाज्वल्यमान् ज्योति हैं। जो अपने गुरु के प्रति भक्ति-भाव से युक्त होकर उनके चरणों में स्वयं को समर्पित करता है, वही आध्यात्मिक सत्य को ग्रहण करने में सक्षम होता है।

ईश्वर कभी आपसे दूर नहीं हैं। बन्धन की इस अवस्था में वही प्रभु अदृश्य रूप से आपका पालन-पोषण करते हैं और वे ही आध्यात्मिक गुरु के रूप में आकर आपका मार्गदर्शन करते हैं। इसलिए अपने गुरु को हाड़-मांस से निर्मित एक सामान्य व्यक्ति कदापि मत समझिए। उन्हें ईश्वर तुल्य मानिए। एक सत्यान्वेषी साधक के लिए यह पहली शर्त्त है।

श्री रामकृष्ण परमहंस ने एक दीन-हीन, परन्तु आज्ञाकारी एवं भक्त रसोइये को अपना शिष्य बनाया, क्योंकि उसमें उन्हें आध्यात्मिक ज्योति दिखाई पड़ी। सिक्खों के एक गुरु भिश्ती का काम करते थे, तो दूसरे उबला चना बेचते थे।

आपकी आँखें अज्ञान के मोतियाबिन्द से ढकी हुई हैं, इसीलिए तो आप अन्धे हैं। अपने गुरु की शिक्षाओं का निष्ठापूर्वक पालन कीजिए और आध्यात्मिक मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़ते जाइये। गुरु द्वारा बताये गये उपचार से अज्ञान का मोतियाबिन्द अपने आप दूर हो जाएगा।

आपके अन्दर सद्गुरु से मिलन हेतु अतिशय प्रेम एवं प्रबल इच्छा होनी चाहिए। तभी आपको उनका दर्शन प्राप्त हो सकेगा। गुरु के सामने अपने हृदय को खोल दीजिए और उनकी कृपा की याचना कीजिए। नम्रता एवं आत्मत्याग के माध्यम से ही ईश्वर या गुरु की कृपा प्राप्त होती है। इस हेतु आपको लगन के साथ प्रयास करना चाहिए। तभी आप लाभान्वित हो सकेंगे।

गुरु का मार्गदर्शन तथा श्रद्धा, भक्ति एवं आत्मसमर्पण से युक्त साधना ही सभी आध्यात्मिक दर्शनों और धर्मों के आधार रहे हैं। सब के प्रति प्रेम, इन्द्रिय संयम, ब्रह्मनिष्ठ गुरु का मार्गदर्शन, गहन श्रद्धा और आत्मत्याग – ये सभी शीघ्र लक्ष्य-प्राप्ति में निश्चित रूप से सहायक होते हैं।

एक जीवनमुक्त ऋषि ही वास्तविक गुरु और आध्यात्मिक मार्गदर्शक होते हैं। ऐसे सद्गुरु पूर्ण ब्रह्मविद् या ब्रह्मज्ञानी होते हैं। या यूँ कहें वे ब्रह्म के समरूप ही होते हैं। वे संसार के लिए वरदान होते हैं। अज्ञान के भवसागर में गोता लगा रहे लोगों के लिए वे आध्यात्मिक प्रकाश-स्तम्भ होते हैं। ज्ञान की मशाल हाथों में लिए वे साधकों का निरन्तर मार्गदर्शन करते हैं। ऐसे सद्गुरुओं और सन्तों की जय हो!

सद्गुरु अति विनम्र होते हैं। बाहर से वे एक सामान्य आदमी जैसे ही लगते हैं। वे कभी इस बात का प्रचार नहीं करते कि मैं सद्गुरु या ब्रह्मज्ञानी हूँ। वे कभी ऐसा नहीं कहते कि 'मैं एक प्रबुद्ध व्यक्ति हूँ, मैं अवतार हूँ, मुझे अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हैं, मैं तुम्हें मुक्ति प्रदान करूँगा।' वे पूर्णत: निष्काम होते हैं।

गुरु धन, यश या प्रतिष्ठा की कामना नहीं करते। उनके अन्दर आश्रम या पन्थ की स्थापना की इच्छा भी नहीं होती। वे तो केवल समस्त संसार की उन्नति एवं विश्वबन्धुत्व की स्थापना के लिए प्रयासरत रहते हैं। वे कहते हैं, 'मेरा न कोई अनुयायी है न शिष्य, मेरा न कोई आश्रम है न सम्पत्ति।' किसी भी व्यक्ति या वस्तु से उनकी आसक्ति नहीं होती। वे 'मैं' और 'मेरे-पन' की अवधारणा से पूर्णत: मुक्त होते हैं।

वे अपने आस-पास रहने वाले लोगों को कभी यह प्रचार करने की अनुमति नहीं देते कि उन्हें सिद्धियाँ प्राप्त हैं या वे एक पहुँचे हुए महात्मा हैं। वे लोक-प्रसिद्धि से सर्वथा दूर रहना चाहते हैं। वे हमेशा स्वयं को छिपाए रहते हैं। यदि किसी स्थान में उन्हें प्रसिद्धि मिल जाती है तो वे तत्काल उसे छोड़ देते हैं।

यदि कोई व्यक्ति कहता है कि 'मैं महात्मा हूँ, मैं आत्मज्ञान-प्राप्त सद्गुरु हूँ' और यदि उसके शिष्यगण यह प्रचारित करते हैं कि उनके गुरु अनेक सिद्धियों से युक्त

हैं जिनका उन्होंने प्रदर्शन भी किया है, तो समझ लीजिए कि वह व्यक्ति महात्मा नहीं है। उपनिषदों द्वारा स्पष्ट घोषणा की गयी है कि जो व्यक्ति कहता है कि 'मैं ब्रह्म को जानता हूँ', वह ब्रह्म को नहीं जानता, और जो कहता है कि 'मैं ब्रह्म को नहीं जानता', वह वास्तव में ब्रह्मज्ञानी है।

यदि आप किसी व्यक्ति की संगति में उन्नत और उदात्त अनुभव करते हैं और आप पाते हैं कि वे सरल, विनीत, विनम्र, सहिष्णु, दयालु, निष्काम, नि:स्वार्थ, शान्त, प्रेममय एवं विवेकी हैं, तो उन्हें अपना गुरु बना लें। अनेक वर्षों तक सद्गुरु के सान्निध्य में रहने के बावजूद भी उनकी महानता को समझ पाना बहुत कठिन है। वे समुद्र के समान गहरे होते हैं। उनकी महिमा अकथनीय, ज्ञान वर्णनातीत तथा अवस्था अबोधगम्य होती है।

सिद्धियों से युक्त होना किसी महात्मा की महानता की पहचान नहीं है, और न ही इससे यह प्रमाणित होता है कि उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त है। सद्गुरु किसी चमत्कार अथवा सिद्धि का प्रदर्शन नहीं करते। साधकों को प्रोत्साहित करने तथा उनके हृदय में अतीन्द्रिय शक्तियों के प्रति विश्वास पैदा करने हेतु वे कभी-कभी सिद्धियों का प्रदर्शन अथवा उपयोग कर सकते हैं। सद्गुरु तो असंख्य सिद्धियों से सम्पन्न तथा समस्त प्रकार के दिव्य ऐश्वर्यों से युक्त होते हैं।

सच्चे गुरु आत्मज्ञानी होते हैं। उन्हें आत्मा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। वे समदृष्टि एवं सन्तुलित मन से युक्त तथा राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, घमण्ड एवं अहंकार से मुक्त होते हैं। वे दया के सागर होते हैं। उनकी उपस्थिति मात्र से जिज्ञासु शान्ति एवं उन्नत मनोवस्था प्राप्त कर लेता है तथा उसके समस्त सन्देह

दूर हो जाते हैं। वे पूर्णतया निर्भय होते हैं। वे किसी व्यक्ति से कुछ अपेक्षा नहीं रखते। उनका चरित्र अन्य लोगों के लिए आदर्श होता है। वे आह्लाद एवं आनन्द की प्रतिमूर्ति होते हैं। वे सदैव सच्चे जिज्ञासुओं की खोज में रहते हैं।

दुर्भाग्यवश यह संसार नकली गुरुओं से भरा हुआ है। ऐसे लोगों से सावधान रहिए। वे निष्कपट एवं भोले लोगों का शोषण करते तथा उन्हें अज्ञान के अंधेरे गर्त्त में डालते हैं। वे लोगों को पथभ्रष्ट करते हैं। यह तो वैसा ही हुआ जैसे एक अन्धा आदमी दूसरे अन्धे आदमी का मार्गदर्शन करे।

सिद्धियाँ व्यक्ति को ब्रह्म एवं ब्रह्मज्ञान से दूर ले जाती हैं। किसी व्यक्ति की सिद्धियों से प्रभावित मत होइए।

यदि कोई व्यक्ति यश, प्रसिद्धि, सम्पत्ति या स्वार्थपूर्ति हेतु सिद्धियों का प्रदर्शन करता है, तो समझना चाहिए कि वह धूर्त्त है। कुछ समय के बाद ऐसे व्यक्ति की सिद्धियाँ लुप्त हो जाती हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरण देखने में आते हैं।

अनुयायीगण अपने गुरु की शक्ति के बारे में अनेक तरह के प्रचार-प्रसार द्वारा उनकी प्रतिष्ठा को आँच लगाते हैं। आध्यात्मिक गुरुओं को अपने शिष्यों को कड़ाई से यह चेतावनी देनी चाहिए कि वे ऐसा न करें। लोग ऐसे गुरुओं में कतई विश्वास नहीं करते जिनके अनुयायी उनके बारे में तरह-तरह का प्रचार करते हैं। प्रारम्भ में वे ऐसे गुरुओं के प्रति आकृष्ट हो सकते हैं, किन्तु शीघ्र ही उनका विश्वास टूट जाता है। वे पीछे हट जाते, उनसे सम्बन्ध तोड़ लेते, तथा उनकी आलोचना भी करने लगते हैं। आखिर आम लोग भी समझदार और विवेकी होते हैं। यथार्थ को आप कब तक छिपा सकते हैं? अन्ततः सत्य तो प्रकट होगा ही। मयूरपंख लगाए हुए कौए की पहचान में अधिक विलम्ब नहीं हो सकता।

भारत अद्वैत दर्शन की पवित्र भूमि है। यहाँ दत्तात्रेय, शंकराचार्य एवं वामदेव जैसे महात्मा अवतरित हुए, जिन्होंने जीवन एवं चेतना के एकत्व का उपदेश दिया। पर आज वही भारत सम्प्रदायवादियों से भरा हुआ है। कितनी दयनीय स्थिति है यह! समुद्र के किनारे फैले हुए बालू के कणों को गिनना सरल है, किन्तु आज भारत में प्रचलित सम्प्रदायों की गिनती करना कठिन है। प्रतिदिन कोई-न-कोई मत या सम्प्रदाय कुकुरमुत्ते की तरह उत्पन्न हो रहा है, जो पहले से मौजूद कलह को और अधिक बढ़ा देता है। चारों तरफ निराशाजनक असामंजस्य एवं आपसी फूट का राज्य है। सब ओर मतभेद, मुकदमे, हाथा-पाई, दुष्प्रचार एवं मुठभेड़ का बोलबाला है। सड़कों पर एक गुरु के शिष्य दूसरे गुरु के शिष्यों से लड़ रहे हैं। सर्वत्र शान्ति और सामंजस्य का अभाव है।

चैतन्य महाप्रभु, गुरु नानक और स्वामी दयानन्द, सभी उदारचरित एवं उदात्त आत्माएँ थे। उनके सभी उपदेश उत्कृष्ट एवं सार्वभौमिक थे। वे कभी अपना पंथ, मत या सम्प्रदाय स्थापित करना नहीं चाहते थे। यदि वे आज हमारे बीच होते, तो अपने अनुयायियों के कारनामों पर आँसू बहाते। अनुयायी लोग ही तो गम्भीर गलतियाँ और भारी भूलें करते हैं। उनका हृदय संकुचित तथा मन संकीर्ण होता है। वे मतभेद, परेशानी और दलगत भावना पैदा करते हैं।

एक आध्यात्मिक प्रणेता को कदापि सम्प्रदाय या पंथ की स्थापना नहीं करनी चाहिए। उन्हें दूर-दृष्टि से काम लेना चाहिए। पंथ की स्थापना का तात्पर्य होता है विश्व-शान्ति को भंग करने वाले एक और कलह-केन्द्र का निर्माण। ऐसा व्यक्ति देश और समाज को लाभ के बजाय हानि पहुँचाता है। हाँ, व्यापक और सार्वभौमिक

सिद्धान्तों पर आधारित संस्था की स्थापना अवश्य की जा सकती है। ये सिद्धान्त और विचार ऐसे हों, जिनका दूसरों के सिद्धान्तों से विरोध न हो तथा जो सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य एवं अनुकरणीय हों।

जड़ भरत, वामदेव एवं सदाशिव ब्राह्मण जैसे लोगों ने परमहंस की तरह जीवन बिताया। उन्होंने आश्रमों की स्थापना नहीं की। उन्होंने न तो कभी मंच से प्रवचन दिया और न ही कोई शिष्य बनाए। तथापि उनका यश पीढ़ी-दर-पीढ़ी उजागर होता चला गया। आज भी लोग उन्हें आदर्श आध्यात्मिक पुरुषों के रूप में स्मरण करते हैं। उन्होंने अपनी आदर्श एवं उदात्त जीवनशैली द्वारा लोगों के मानस-पटल पर अमिट छाप छोड़ दी। वे सचमुच महान् आध्यात्मिक विभूतियाँ थे। हिमालय की सुदूर कन्दरा में निवास करने पर भी आत्मज्ञानी पुरुष का स्पन्दन समस्त संसार को शुद्ध करता है। उनका जीवन ही उनकी शिक्षा का मूर्त्त रूप होता है। उनके लिए व्याख्यान या प्रवचन देना आवश्यक नहीं होता। सच्चे गुरु की ऐसी ही महानता होती है!

युवा जिज्ञासुओं को कुछ वर्षों तक एक सद्गुरु के मार्गदर्शन में अवश्य रहना चाहिए। वहाँ गुरु की सेवा करना प्राथमिक कर्त्तव्य है। आप उनके शरीर की सेवा करें, वे आपकी आत्मा का उत्थान करेंगे। आप में दास्य भाव होना चाहिए और आज्ञापालन एवं विनम्रता की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। यदि आप मनमर्जी करेंगे तो उद्दण्ड और दम्भी हो जाएँगे। आध्यात्मिक मार्ग पर आपकी तनिक भी प्रगति नहीं होगी।

अनेक साधक शिकायत करते हैं कि वे सक्षम गुरु पाने में असमर्थ हैं। क्या एक रोगी किसी चिकित्सक के परामर्श-कक्ष में प्रवेश करते ही उनकी योग्यता को जान सकता है? अज्ञानी शिष्य, जिन्हें तनिक भी आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त नहीं है, तुरंत अपने गुरु को जाँचने-परखने लगते हैं। वे उनकी बाह्य अभिव्यक्ति और रहन-सहन से गलत अनुमान एवं निष्कर्ष निकालते हैं। परमहंसों के तौर-तरीके रहस्यपूर्ण होते हैं। भले ही कन्धे-से-कन्धा मिलाकर आप बारह वर्षों तक उनके साथ रहें, फिर भी आप उनके हृदय एवं ज्ञान की गहराई को शायद ही समझ सकेंगे। ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभव तो वास्तव में आन्तरिक अवस्थाएँ होती हैं।

सच्चे गुरु में मुझे पूर्ण विश्वास है। सद्गुरु के प्रति मेरे मन में अत्यधिक श्रद्धा है। सद्गुरु के चरण-कमलों को नमस्कार! मेरा हृदय उनके चरण-कमलों की सतत् सेवा हेतु लालायित रहता है। मेरी मान्यता है कि मन की अशुद्धियों के निष्कासन हेतु गुरु-सेवा से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। मेरा विश्वास है कि अमरत्व के दूसरे किनारे तक पहुँचने के लिए गुरु का सतत् सान्निध्य ही एकमात्र सुरक्षित नौका है।

यह संसार दिव्यज्ञान-संपन्न महात्माओं से भरा रहे, जो मानवता का मार्गदर्शन करते रहें! आप सभी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सन्तों की सेवा करें और उनका आशीर्वाद प्राप्त करें! आप सभी जीवनमुक्त के रूप में प्रकाशित हों!

गुरु-शिष्य सम्बन्ध का आधार

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

हमारे यहाँ प्राचीन काल से गुरु-शिष्य परम्परा चली आ रही है। ऐसा माना जाता है कि गुरु-शिष्य सम्बन्ध बहुत जरूरी है, इसके बिना आध्यात्मिक विकास सम्भव नहीं। बहुत-से लोग आध्यात्मिक गुरु की खोज में इधर-उधर भटकते भी हैं, पर गुरु बनाने का आधार आखिर क्या है? जैसे किसी लड़की के लिए लड़का या किसी लड़के के लिए लड़की खोजते हैं तो इस खोज का कुछ आधार होता है। लड़की सिर्फ देखने में सुन्दर हो या डेढ़-दो लाख दहेज अपने साथ लाएगी, शादी का यह आधार तो नहीं हो सकता। लड़की अच्छे कुल की हो, यह एक आधार हो सकता है। पर एक अच्छे कुल में भी चण्डी पैदा हो सकती है। फिर आखिर आधार क्या है?

जिस तरह से स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की खोज में एक आधार होता है या बनाया जाता है, जिसके बाद दोनों के सम्बन्ध स्थिर रहते हैं, उसी तरह से गुरु और शिष्य के सम्बन्ध का आधार क्या हो? सभी धर्मों, शास्त्रों और संत-महात्माओं ने एक स्वर से कहा है कि गुरु मंत्र लेना चाहिए। गुरु से मंत्र लिया जाता है और वहीं से गुरु-शिष्य सम्बन्ध शुरू होता है। तो मंत्र ही गुरु-शिष्य सम्बन्ध का मूल आधार माना गया है।

शिष्य की साधना

जो मंत्र गुरु से मिलता है, उसको शिष्य आगे विकसित करता है। वह गुरु मंत्र जपता है और जपने से उसकी बुद्धि प्रखर होती है। फिर जब गुरु देखते हैं कि शिष्य उन्नति कर रहा है तब उसको कुछ और साधना बतलाते हैं। आखिर सारी साधना पहले ही दिन तो नहीं बताई जा सकती। जिस दिन तुम गुरु बनाते हो, उसी दिन सारा पाठ्यक्रम थोड़े ही तुम्हारे सामने खोला जाएगा। उस दिन तुम से केवल 'क ख ग' शुरू करा देते हैं। 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र की पाँच माला करो, बस।

उसके एक-दो साल बाद फिर गुरुजी दूसरी बात बताएँगे। हो सकता है तुमसे कहें, 'तुम तो गवैया आदमी हो, सबेरे ॐ का उच्चारण करो या कान बन्द करके भ्रामरी करो या नाद योग का कोई अभ्यास करो', क्योंकि वे देखते हैं कि तुम्हारी उस तरफ रुचि है।

अगर वे देखते हैं कि तुम्हारा मन बहुत चंचल है, तुम व्यापार में बहुत व्यस्त रहते हो, कभी रात को ग्यारह बजे सोते हो, कभी सबेरे दो बजे उठते हो, कभी इंग्लैण्ड जा रहे हो तो कभी अमरीका, कभी पुलिस का चक्कर है तो कभी आयकर विभाग का, कभी घाटा है तो कभी मुनाफा – ऐसी स्थिति में गुरुजी कहेंगे, 'जप तो तुम करते ही हो, ऐसा करो, सबेरे थोड़ा आसन-प्राणायाम भी कर लिया करो, ताकि तुम्हें तनाव न हो, कहीं दिल पर या तंत्रिका-तंत्र पर कोई बुरा असर न हो जाए।'

उसके बाद अगर देखते हैं कि तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ी परेशानी आ गयी, कोई मुकदमा या और कोई झंझट है तो कहेंगे, 'तुम यह अनुष्ठान कर लो।' इस तरह कोई सकाम अनुष्ठान करवा देते हैं, नौ महीने या छ: महीने या तीन महीने का। परेशानी दूर हो गई तुम्हारी।

गुरु इस तरह धीरे-धीरे, संभालते-संभालते शिष्य को एक ऐसे बिन्दु पर ले आते हैं जहाँ पर वह यह जान जाता है कि जीवन में जो हो चुका है, जो हो रहा है या जो होने वाला है, वह तो पहले से ही निश्चित था, पर मैं व्यर्थ में घबरा रहा था, क्योंकि मुझे उसकी जनकारी नहीं थी। अगर मुझे पहले से मालूम होता कि होने वाला होकर ही रहता है, तो मैं चुप हो जाता। लेकिन मैं तो इतना घबरा गया था कि मेरा रक्तचाप बढ़ गया, दो बार दिल का दौरा भी पड़ गया। अगर मुझे मालूम होता कि यह होने वाला है, पर बाद में ठीक हो जाएगा, तो मैं चुपचाप झेल लेता। इस अवस्था में शिष्य को कर्म और कर्म को बनाने वाले परमात्मा का ज्ञान होता है।

गुरु के प्रति दृष्टिकोण

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध नित्य-निरंतर बना रहना चाहिए। आज इस दर्जी से पतलून के लिए कपड़ा कटवाओ, कल दूसरे दर्जी से, परसों तीसरे दर्जी से, ऐसा करते-करते किसी दिन पतलून तो चड्ढी बनकर रह जाएगी! इसी तरह एक के बाद दूसरे गुरु के पास जाते रहोगे तो तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन का स्वरूप ही बिगड़ जाएगा। इसलिए एक गुरु का होना आवश्यक है।

बहुत-से लोग गुरु को खोजते भी रहते हैं और बीच-बीच में फीते से उसको नापते भी रहते हैं। यह तो पाँच फुट एक इंच का है, नहीं इसे रद्द कर दो। गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध वही है जो लड़के-लड़की के बीच का है। देखा और प्यार हो गया! मिलते ही भक्ति एकदम जाग्रत हो जाए, मन एकदम शांत हो जाए। गुरु को मापने के लिए कोई कसौटी नहीं रखनी चाहिए। एक लड़का स्कूल में भर्ती

हुआ नहीं और पहले ही मास्टर साहब की योग्यता के बारे में पूछता है! हम सभी महा-अनाड़ी हैं। हम क्या गुरु को पहचानेंगे? हम खुद कुछ नहीं हैं, लेकिन गुरु के बारे में तहकीकात कर रहे हैं कि वह मेरे लायक है कि नहीं!

गुरु के पास खाली दिमाग लेकर जाओ, गुरु की खोज खाली दिमाग से करो। हमने जब घर छोड़ा, तब सबसे पहले राजस्थान गए। राजस्थान में हमारी मुँह बोली बहन थी, वह डॉक्टर थी और अध्यात्म में बहुत रुचि रखती थी। हमने सोचा शायद वह कुछ बता पाएगी। उसने हमें अपने गुरुजी का पता बताया और हम वहाँ चले गए। वे गुरुजी मुझे देखकर बहुत खुश हुए। एक पढ़ा-लिखा, तेज-तर्रार जवान लड़का आया है, अच्छा है, मेरे बाद आश्रम देखेगा। उन्होंने मुझे अपने उत्तराधिकारी के रूप में देखा।

वे अच्छे आदमी थे, तंत्र शास्त्र के बहुत अच्छे ज्ञाता थे। मैं वहाँ छ: महीने रहा, जिस दौरान मैंने उनसे तंत्र के सैद्धान्तिक पक्ष के बारे में बहुत कुछ सीखा। उनके प्रति मेरे मन में बहुत सम्मान था और वे भी मुझे बहुत सम्मान के साथ रखते थे। पर एक दिन मेरे दिमाग में विचार आया, 'नहीं। मुझे आश्रम का उत्तराधिकारी तो बनना है नहीं। जितनी जमीन-जायदाद मैं घर में छोड़कर आया था, उतनी तो यहाँ है भी नहीं। अगर जमीन-जायदाद ही लेनी है, तो घर वापस चले जाना चाहिए।' फिर एक दिन उस आश्रम की बारह फुट ऊँची दीवार कूद कर वहाँ से भाग गया। चलते-चलते सहारनपुर के नजदीक लक्सर पहुँचा। वहाँ एक बड़ी जटा-दाढ़ी वाले महात्मा मिले। उन्होंने पूछा, 'किधर जा रहा है?' मैंने कहा, 'चेला बनना है, गुरु चाहिए।'

यह सुनकर वे मुझ पर बहुत बिगड़े। कहा, 'बड़ा चेला बनने चला है।' उसके बाद वे मुझे काली कमलीवाले के गुरुद्वारे ले गये और वहाँ रख दिया। बोले, 'यहीं खोजना, यही तो गुरु की जगह है।' दूसरे दिन मैं कैलास आश्रम में विष्णुदेवानन्द जी महाराज के पास गया। उनको प्रणाम करके कहा, 'मुझे संन्यास लेना है।' उन्होंने कहा, 'हम संन्यास देते नहीं हैं, हम तो अखाड़े के आचार्य हैं। बगल में स्वामी शिवानन्द जी रहते हैं, वहाँ जाओ। उनसे संन्यास लेकर यहाँ आ जाओ, हम रख लेंगे तुमको।'

स्वामी शिवानन्द

मैं शिवानन्द आश्रम की ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर जैसे ही मैंने स्वामी शिवानन्दजी को देखा, गुरु के बारे में मेरे सारे विचार ही खत्म हो गये। मैंने अपने आप से कहा, 'यहीं रह जाओ!' याने जिस व्यक्ति को देखने के बाद प्यार की आकांक्षा खत्म हो जाए, श्रद्धा परिपूर्ण हो जाए, वही तुम्हारा गुरु है, वही तुम्हारा प्रेमी है। हम वहाँ जम गये, और जो जमे सो जम ही गये।

वहाँ परिस्थितियाँ बहुत कठिन थीं। हमारे गुरुजी तो मालदार थे नहीं। रोज भिक्षा के लिए जाना पड़ता था। छोटी-छोटी कुटिया थी, जमीन पर सोना पड़ता था। मच्छर काटते थे, बिच्छू काटते थे, साँप का डर रहता था। आज उसकी याद करते हैं तो हमको आश्चर्य होता है कि हम वहाँ रहे कैसे! इतने मच्छर कि टट्टी करते-करते चारों ओर से पाँच सौ मच्छर धावा बोल देते थे। अगर किसी को दस्त होता, वह भी बन्द हो जाता! ऐसी कठिन परिस्थितियों में वहाँ रहे।

हमारे गुरुजी भी ऐसे कि अपने कमरे में रहते थे, निकलते ही नहीं थे। गुरु और चेले की मुलाकात ही न हो, तो चेला क्या सीखे! वे कुटिया में रहते थे, हम बाहर रहते थे और आश्रम में नौकर का काम करते थे – बर्तन मांजना, खाना बनाना, गंगा जी से पानी लाना और पेड़ काट-काट कर लकड़ी लाना। भगवान कृष्ण ने भी वही किया था, जंगल से लकड़ी लाते थे। चीनी का परमिट लेने के लिए आश्रम से छ: किलोमीटर दूर नरेन्द्रनगर चढ़ना पड़ता था और वहाँ जाकर डी.सी. और डी.एम. से मिलना पड़ता था। वे अँग्रेज अफसर थे, साधु-संन्यासी को बिल्कुल नहीं मानते थे। कभी-कभी बड़ी दिक्कत कर देते थे। लेकिन कुछ भी कहो, बड़े आनन्द के साथ वे दिन कटे। कभी-कभी मन में

ख्याल आता है कि भगवान! यह शरीर छूट जाय और फिर किसी आश्रम में चेला बनकर आ जाएँ। चेला बनकर रहने में जो मजा है वह गुरु बनकर रहने में नहीं है।

मैं अपने जीवन का उदाहरण यही समझाने के लिए दे रहा था कि गुरु और शिष्य का सम्बन्ध एक प्रकार से प्रेम-सम्बन्ध है। अन्तर केवल इतना है कि संसार में प्रेम का आधार भौतिक जीवन होता है, यहाँ प्रेम का आधार आध्यात्मिक जीवन होता है। संसार में उसको प्रेम कहते हैं, यहाँ इसको भक्ति कहते हैं। वहाँ उसको कहते हैं इश्क मजाजी, यहाँ इसको कहते हैं इश्क हकीकी। यहाँ गुरु और शिष्य, दोनों की आत्माओं का मेलजोल होता है और इसी मेलजोल से ज्ञान रूपी संतान की उत्पत्ति होती है।

गुरु की आवश्यकता

इसलिए गुरु का होना बहुत जरूरी है। जीवन में चाहे तुम प्राथमिक विद्यालय तक पढ़ना चाहो या विश्वविद्यालय तक, शिक्षक की तो जरूरत पड़ती ही है। उसी तरह से यदि तुम सिर्फ पूजा-पाठ ही सीखना चाहो या मंत्र ही जपना चाहो तो भी गुरु बनाओ। चाहे हठयोग सीखना चाहो या फिर राजयोग, भक्तियोग या ज्ञानयोग, गुरु तो बनाना ही पड़ेगा।

एक बात हमेशा याद रखना। गुरु शुरू में भले ही असली न हो, लेकिन एक दिन उसे असली बनना पड़ता है। मान लो, कोई व्यक्ति चेले को ठगने के लिए ही गुरु बना है। वह ज्यादा दिन नहीं चल सकता है। एक-न-एक दिन उसकी आत्मा अन्दर से जागकर उसको गुरु बनने को विवश करेगी। हमने कई लोगों के साथ ऐसा देखा है। इसलिए कहता हूँ कि संसार में अच्छे गुरुओं की कमी नहीं है।

गोरी जात इतनी होशियार है कि सारी दुनिया को बेवकूफ बना रही है। परन्तु जो उनको ठगे, वह कितना होशियार होगा? गोरे लोग बहुत बुद्धिमान्, अत्यंत साक्षर, समर्थ और अपना दिमाग लगाने वाले हैं। दूसरे के दिमाग से कुछ सोचते नहीं हैं। माता-पिता के दिमाग से भी नहीं सोचते। पर इन लोगों के यहाँ से भी पिछले कई वर्षों से गुरु की खोज में लड़के और लड़कियाँ लाखों की संख्या में हिन्दुस्तान आ रहे हैं। और कहीं नहीं जाते। गुरु बनाने के लिए कोई रूस या अमरीका जाता है क्या? हाँ, पैसा कमाने के लिए, शिक्षा के लिए लोग अमरीका जाते हैं, लेकिन कभी सुना है कि कोई गुरु बनाने के लिए अमरीका गया? जिसको भी गुरु बनाना है, उसको भारत आना होगा। इसका मतलब सारी दुनिया इस बात को मानती है कि भारत गुरुजनों का देश है। यहाँ लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा दी जाती है। जिस तरह से पत्नी के बिना पुरुष का और पति के बिना स्त्री का जीवन अर्थहीन है, उसी तरह से गुरु के बिना शिष्य का आध्यात्मिक जीवन अर्थहीन होता है।

– 2 सितम्बर 2000, रिखियापीठ

गुरु का मार्गदर्शन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

जीवन में हम लोग दो मार्गों को देखते हैं, प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग। प्रवृत्ति-मार्ग में जीव, इन्द्रियों और संसार के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। यहाँ पर तीन चीजों की मुख्य भूमिका रहती है – जीव, जीव की इन्द्रियाँ जो सम्बन्ध का माध्यम बनती हैं, तथा संसार। यह ऐसा मार्ग है जहाँ भौतिक इन्द्रियाँ और मानसिक वृत्तियाँ इन्द्रिय-विषयों में पूरी तरह लिप्त रहती हैं। ऐसी स्थिति में आंतरिक स्थिरता, संतुलन और सामंजस्य प्राप्त करने के लिए, दिव्यता का साक्षात्कार कर पाने के लिए संयम और अनुशासन का मार्ग निर्दिष्ट किया गया है। संयम और अनुशासन ही प्रवृत्ति-मार्ग की साधना बनते हैं। संयम वाणी, मन एवं इन्द्रियों का होता है, और अनुशासन मंत्रों, योगाभ्यासों तथा निद्रा एवं आहार में नियमितता से सिद्ध होता है।

निवृत्ति की सिद्धि के लिए तीन आधार हैं। पहला है त्याग, दूसरा है समर्पण, और तीसरा है विश्वास। लेकिन इन तीनों को सिद्ध करने के लिए हमें गुरु की आवश्यकता होती है। जो प्रवृत्ति-गामी हैं उन्हें गुरु की आवश्यकता नहीं। हाँ, अगर गुरु मिल जाए तो कोई आपत्ति भी नहीं, लेकिन सच पूछा जाए तो प्रवृत्ति-गामियों के लिए गुरु की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वे लोग तो अपनी इन्द्रियों द्वारा निर्देशित मार्ग पर चल ही रहे हैं। प्रवृत्ति-गामी का मतलब ही होता है इन्द्रिय-निर्दिष्ट मार्ग पर चलना, मन-मर्जी के मुताबिक चलना। लेकिन जो निवृत्ति-गामी होते हैं उन्हें गुरु की जरूरत पड़ती है। गुरु वह साधन बनता है जो त्यागमय एवं समर्पित जीवन अपनाने और अपने भीतर दृढ़ विश्वास धारण करने की प्रेरणा देता है।

प्रवृत्ति-मार्ग में गुरु की भूमिका

प्रवृत्ति-मार्ग पर गुरु किस तरह का मार्गदर्शन देता है? तुम लोग तो पहले से ही प्रवृत्ति-मार्गी जीवन जी रहे हो, तुम्हें उस मार्ग तक ले जाने की आवश्यकता नहीं, लेकिन अपने वातावरण, समाज और प्रकृति से तुम्हारा जो सम्बन्ध है, उसे 'फाइन-ट्यून' करने की आवश्यकता है।

दिमाग की शल्यक्रिया – इसके लिए सबसे पहले गुरु को मानसिक स्तर पर काम करना पड़ता है। यहाँ गुरु 'दिमागी-सर्जन' की भूमिका निभाता है। हर व्यक्ति मानसिक स्तर पर कुछ विशेष परिस्थितियों से घिरा हुआ है। चाहे वह संत हो या संसारी, उसे मानसिक विक्षेप, तनाव, चिन्ता, विषाद और निराशा का सामना करना ही पड़ता है। गुरु केवल उसके सोचने का ढंग बदल देता है, ताकि जीवन के प्रति नकारात्मक के बजाय सकारात्मक दृष्टिकोण हो सके। असहाय और निराश होने

के बजाय तुम आशावादी बनते हो, तुम्हारे भीतर प्रेरणा और उत्साह जगता है। तुम्हारे मन की फाइन-ट्यूनिंग द्वारा ही गुरु ऐसा कर पाता है।

इस तरह मानसिक स्तर पर गुरु का काम है मन के भ्रमित, संकीर्ण और नकारात्मक विचारों को बदलना। शिष्य के जीवन में पहले वैचारिक परिवर्तन होना है और उसके बाद भाव परिवर्तन। विचारों से हम संसार के विषयों को देखते हैं और उन्हीं के माध्यम से हम परमात्मा तक भी पहुँच सकते हैं। विचार मध्य की स्थिति है, चाहे वह तुम्हें संसार की ओर ले जाए या परमात्मा की ओर। इसलिए गुरु का पहला काम होता है शिष्य के जीवन में वैचारिक परिवर्तन लाना। यह वैचारिक परिवर्तन जीवन के सकारात्मक पक्षों की ओर देखने की प्रक्रिया है। जब तक तुम अपने जीवन के सकारात्मक पक्षों को देखने और उन्हें प्राप्त करने का प्रयास नहीं करोगे, तब तक तुम्हारी मानसिकता में परिवर्तन नहीं आएगा। गुरु ही तुम्हें बतलाता है कि तुम एक अन्य दृष्टिकोण से जगत् को, स्वयं को और परमात्मा को भी देख सकते हो।

शिष्य चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, अगर वह गुरु की इन शिक्षाओं और संदेशों को ग्रहण कर पाता है तो मन की सकारात्मक और रचनात्मक शक्तियाँ अभिव्यक्त होने लगती हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्तित्व की विभिन्न प्रतिभाओं में संतुलन, सामंजस्य और समन्वय होने लगता है। तुम अपने जीवन, परिवार और समाज के प्रति बेहतर दृष्टिकोण अपनाते हो और तुम्हें जीवन में अधिक आनंद और तृप्ति की अनुभूति होती है।

अधिकांश लोग जीवन के इस स्तर तक पहुँचकर संतुष्ट हो जाते हैं और यही उनकी यात्रा का अंतिम पड़ाव हो जाता है। ऐसे लोगों के जीवन में गुरु की आवश्यकता केवल मन की फाइन-ट्यूनिंग के लिए थी और यह प्राप्त हो जाने के बाद उन्हें आगे गुरु की जरूरत महसूस नहीं होती।

दिल की शल्यक्रिया – जीवन का अगला स्तर है दिल की सर्जरी का। ऐसे भी कुछ लोग होते हैं जो अपने मन की सीमाओं को लांघकर अपनी आध्यात्मिक प्रकृति का अन्वेषण करना चाहते हैं। ऐसे लोगों के लिए गुरु दिल के सर्जन बनते हैं। गुरु जो भी साधना पद्धति या विधि हमें सिखलाए, जिस भी दिशा में चलने के लिए हमें प्रेरित करे, उसका पहला प्रयोजन है मन-परिवर्तन और जब गुरु के निर्देशों का पालन करते हुए, आध्यात्मिक साधनाओं को करते हुए हमारा मन शांत और स्थिर हो जाता है, तब फिर भावनाओं में परिवर्तन लाना होता है। मन की फाइन-ट्यूनिंग करने के बाद गुरु शिष्य की भावनाओं पर काम शुरू करता है। गुरु वह आधार बनता है जहाँ शिष्य की समस्त भावनाएँ केन्द्रित होने लगती हैं।

मनुष्य की भावनाएँ उसकी प्राण-शक्ति की अभिव्यक्तियाँ मात्र हैं। प्राण-शक्ति सूक्ष्म और अनियंत्रित होती है। उस पर तुम्हारा कोई नियंत्रण नहीं होता, और कई बार वह भावनात्मक विस्फोट के रूप में प्रकट होती है। मन की परिस्थिति अनुसार यह विस्फोट विभिन्न रूप ले सकता है। अगर मन किसी खतरे का सामना कर रहा है तो यह विस्फोट भय और चिंता का होगा। अगर मन में चिड़चिड़ेपन या रोष की भावना है तो विस्फोट क्रोध के रूप में होगा। यह सब तुम्हारे जीवन में हर क्षण जाने-अनजाने हो ही रहा है। तुम जीवन के विभिन्न प्रभावों और परिस्थितियों पर लगातार प्रतिक्रिया कर रहे हो। लेकिन गुरु के सान्निध्य में तुम अपनी भावनात्मक ऊर्जाओं को एक बिन्दु पर केन्द्रित करने लगते हो। वह बिन्दु आंतरिक होता है, तुम अपनी भावनाओं को बाहरी जगत् से हटाकर आध्यात्मिक आयाम में ले जाते हो।

भावनाओं को भीतरी आयाम की ओर ले जाने की प्रक्रिया भक्ति कहलाती है। भक्ति का अनुभव गुरु के साथ रहकर ही होता है, यही हृदय को खोलने का तरीका है। रामचरितमानस में कहा भी गया है, *प्रथम भगति संतन्ह करि संगा,* भक्ति का प्रथम सोपान साधु-संतों का संग है। सत्पुरुषों के संग से तुम्हारे मन, चेतना और प्राणों का उत्थान होता है। अगर तुम नकारात्मक और आलोचक मनोवृत्ति के लोगों की संगति में रहते हो तो तुम किसी मायने में भक्त नहीं कहला सकते। ऐसी स्थिति में गुरु तुम्हारे दिल की सर्जरी कभी नहीं कर पाएँगे। भक्ति की पहली शर्त्त ही सदाचारी और सत्कर्मी सज्जनों की संगति है। इससे स्पष्ट होता है कि हमारी संगति कितनी महत्त्वपूर्ण होती है। यह हमें गलत मार्ग पर भी ले जा सकती है और सही मार्ग पर भी।

सत्संगति के साथ-साथ विश्वास को भी विकसित करना चाहिए। गुरु के साथ सम्बन्ध श्रद्धा और विश्वास पर आधारित है। भक्ति की पहली शर्त्त अर्थात् सत्पुरुषों

की संगति अपनाने से श्रद्धा और विश्वास अपने आप जागृत होने लगते हैं। धीरे-धीरे अपने बारे में अधिक समझ प्राप्त होती है, जीवन की दिशा स्पष्ट होने लगती है और मार्ग के सभी अवरोध हटने लगते हैं। यही दिल की सर्जरी की शुरुआत है।

गुरु से हमें यह शिक्षा मिलती है कि किस प्रकार हम अपने हृदय को व्यापक बनाकर सर्वव्यापी सत्ता से जुड़ सकते हैं। यह अनुभव मात्र बौद्धिक ज्ञान के रूप में नहीं, बल्कि गहन आत्मीय साक्षात्कार के रूप में उदित होता है – *सियाराममय सब जग जानि, करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानि।* सृष्टि के सभी प्राणियों का सार तत्त्व एक ही है। भौतिक शरीर पंचतत्त्वों से निर्मित है, लोग देखने में भिन्न लग सकते हैं पर चाहे वे भारतीय हों या रूसी या चीनी या जापानी, वे जिस मौलिक तत्त्व से बने हैं, वह एक ही है। आध्यात्मिक स्तर पर एकता का साक्षात्कार गुरु के माध्यम से ही होता है। हम सब एक-दूसरे से और साथ ही परम सत्ता से भी जुड़े हैं। जब इस सत्य का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो जाता है तब भावनात्मक स्तर पर एक गहन रूपांतरण होता है। हमारी भावना जो स्वयं तक ही सिमित थी, अब उसमें परिवर्तन होता है और वह भावना 'मैं' तक सीमित न रहकर सभी से जुड़ती है। मनुष्य स्वार्थ की सीमाओं से ऊपर उठता है, स्वार्थ के बंधनों से अपने आप को मुक्त करता है और एक ऐसी मनोस्थिति को प्राप्त करता है जहाँ उसके भीतर कोई कामना शेष नहीं रहती। कामना रहने का मतलब स्वार्थ-वृत्ति का जन्म और कामनाओं के समाप्त होने का मतलब स्वार्थ-वृत्ति का नाश। जैसे ही हमारे जीवन में स्वार्थ-वृत्ति की प्रबलता कम होती है, हमारा हृदय शुद्ध होने लगता है और जीवन के छल-कपट दूर हो जाते हैं। मन निर्मलता को प्राप्त करता है, भावना शुद्धता को प्राप्त करती है और जीवन के प्रति एक व्यापक दृष्टिकोण विकसित होता है।

गुरु के सान्निध्य में यह जो क्रम सम्पन्न होता है, वह गृहस्थों और संन्यासियों के लिए समान है। गृहस्थ को भी गुरु के आदेशों पर चलकर वैचारिक और भावनात्मक शुद्धि प्राप्त करने की आवश्यकता होती है और संन्यासी को भी। इसके पश्चात् गृहस्थ तो संतुष्ट हो जाता है कि 'मुझे गुरु मिल गए, उनकी कृपा से

मैंने ईश्वर के अनुग्रह को प्राप्त किया, ईश्वरीय अनुग्रह प्राप्त करने के पश्चात् मेरा मन शांत हुआ, मेरी भावना जो पहले अपने तक ही सीमित थी अब व्यापक हो गई, मानसिक शांति और भावनात्मक शुद्धि के कारण अब व्यक्तित्व में सुखद और सकारात्मक अवस्थाओं का अनुभव कर रहा हूँ।' गृहस्थ के लिए गुरु का सम्बन्ध यहीं तक होता है और उसकी यात्रा यहीं रुक जाती है।

निवृत्ति-मार्ग में मार्गदर्शन

कुछ लोग इसके अपवाद होते हैं। वे अध्यात्म मार्ग में और आगे बढ़ना चाहते हैं और अपने आप को आध्यात्मिकता में स्थापित करना चाहते हैं। वे हो जाते हैं संन्यासी जो निवृत्ति-मार्ग का अनुसरण करते हैं। प्रवृत्ति-पथ पर व्यक्ति गुरु का अनुसरण करे या न करे, लेकिन निवृत्ति-पथ की यात्रा शुरू होती है गुरु के साथ। जब तक वह मार्गदर्शक मिलता नहीं, हम अपने आप को प्रवृत्ति-मार्ग से मुक्त नहीं कर पाते हैं। इच्छा भले ही हो जाए कि 'भई, बहुत झंझटों को झेल लिया हूँ, अब थोड़ी आंतरिक शांति चाहिए', लेकिन मार्ग नहीं मालूम पड़ेगा। मार्ग बतलाने के लिए मार्गदर्शक की, गुरु की आवश्यकता होती है।

संन्यासी का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जिसने अपने आप को गुरु की शिक्षाओं के प्रति समर्पित कर दिया है और उनकी शिक्षाओं के अनुसार अपने जीवन के व्यवहारों को ढालने का प्रयास कर रहा है। वास्तव में देखा जाए तो संन्यासी का यही मतलब होता है। संन्यास को हम लोग परम्परा मानते हैं और यह है भी। संन्यास

को जीवन की एक अवस्था मानते हैं और यह है भी। लेकिन जो भावना एक शिष्य के जीवन में संन्यास-दीक्षा के समय उत्पन्न होती है, वह यही कि मैं अपने आप को गुरु के प्रति समर्पित करता हूँ। मैं अब गुरु की शिक्षाओं को आत्मसात् करने के लिए तत्पर हूँ। जब तक हम गुरु के प्रति समर्पित रहते हुए, गुरु की शिक्षाओं को आत्मसात् करते हुए उस मार्ग पर चलते हैं, तब तक गुरु हमें अपने जीवन में त्याग एवं समर्पण को अपनाने तथा विश्वास को धारण करने में सहायता देते हैं। यहीं पर गुरु और शिष्य के बीच एक अंतरंग सम्बन्ध की स्थापना होती है।

अनावश्यक चीजों का त्याग – निवृत्ति-मार्ग का पहला आधार है त्याग। घर-परिवार का त्याग सरल है और संन्यासी को करना भी चाहिए। अगर संन्यासी कहे कि मैं घर-परिवार का त्याग नहीं करूँगा तो फिर वह संन्यासी कैसा? परम्परा में निर्देश दिया गया है कि संन्यासी को अपने घर-परिवार के सम्बन्धों से मुक्त होना है। यहाँ पर त्याग का मतलब छोड़ना नहीं, बल्कि सम्बन्धों से अपने आप को मुक्त करना है।

मुझे याद है बचपन में श्री स्वामीजी एक सूत्र कहा करते थे। बहुत बार मैं उनसे कहता था, 'स्वामीजी, हम शहर में क्यों हैं? साधु लोग तो जंगलों-पर्वतों में रहते हैं। हम लोगों को भी वहीं पर आश्रम बना कर एकांत में रहना चाहिए।' छोटा था, कुछ भी बात कह सकता था। उस समय श्री स्वामीजी समझाते हुए कहते थे, 'देखो, रहने को तो तुम कहीं भी रह सकते हो। चाहे शहर में रहो या जंगल में, लेकिन इस बात को जान लेना कि शहर में शोरगुल नहीं होता और जंगलों में, हिमालय की कंदराओं में शांति नहीं होती। यह सब अपने मन का ही खेल है, मन की ही उपज है। अगर तुम अपने मन को नियंत्रण में रख सकते हो तो बीच बाजार में भी तुमको उतनी ही शांति मिलेगी जितनी हिमालय में तुम खोजते हो। और अगर अपने मन को वश में नहीं रख सकते तो हिमालय की गुफाओं में बैठकर भी तुम अशांत रहोगे।'

पहले तो यह बात समझ में नहीं आती थी, लेकिन अब इस बात को समझ पाते हैं, क्योंकि वास्तव में यह सब मन के सम्बन्धों का ही खेल है, चाहे वह सम्बन्ध घर-परिवार से हो या इन्द्रियों से या इन्द्रियों के विषयों से। यहीं पर गुरु त्याग की शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं कि जो तुम्हारे लिए अनुपयोगी है, उसे छोड़ते जाओ। लेकिन छोड़ने के पहले, जो उपयोगी है उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास भी करते जाओ। जैसे-जैसे तुम पाते जाओगे, वैसे-वैसे जो छूटने योग्य चीजें हैं, वे छूटती जाएँगी।

क्या तुम अनावश्यक चीजों को सचमुच छोड़ सकते हो? बहुत कठिन है। मुझे आज तक कोई नहीं मिला जो यह कर सके। लोग हमेशा अपनी कामनाओं, वासनाओं, महत्त्वाकांक्षाओं और स्मृतियों की गठरी ढोते रहते हैं। जीवन की अच्छी-बुरी स्मृतियाँ मृत्यु-पर्यन्त बनी रहती हैं। तुम अपने मन से यह अनावश्यक सामग्री नहीं निकाल पाते।

गुरु का सान्निध्य ही तुम्हें यह सब अनावश्यक सामग्री छोड़ना सिखाता है। कैसे? उसे स्वीकार करके। गुरु से तुम्हें यह शिक्षा मिलती है कि अपने जीवन की अनावश्यक सामग्री का अस्तित्व स्वीकार करो और उसकी निरर्थकता को अच्छी तरह जान लो। जब तुम्हें कोई मूल्यवान् चीज मिलती है तो मूल्यहीन चीज अपने आप छूट जाती है। यही त्याग है – पहले मूल्यवान् चीज की प्राप्ति और फिर मूल्यहीन चीज की तिलांजलि। त्याग का वास्तविक अर्थ है अपने आप को उचित, उपयुक्त, सकारात्मक एवं उत्तम चीजों से युक्त करना और नकारात्मक एवं

हानिकारक चीजों से मुक्त करना। गुरु तुम्हारी कमियों की ओर इशारा कर तुम्हें त्याग का मार्ग दिखाता है। कालान्तर में तुम स्वयं अपने जीवन में त्याग का अनुभव करने लगते हो। श्री स्वामीजी के प्रशिक्षण से मैंने यही समझा और जाना है।

तुम्हारे पास सब कुछ हो सकता है, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि तुम उसका उपभोग करो या उससे आसक्त हो जाओ। वह भले ही तुम्हारे काम का न हो, लेकिन किसी दूसरे के काम जरूर आ सकता है। त्याग का यही सिद्धान्त है – 'मुझे अमुक चीज की न जरूरत है और न ही कोई चाह। वह वहाँ पड़ी है, ठीक है। समय आने पर उसका सदुपयोग होगा।' यह एक ऐसी अवस्था का उदाहरण है जहाँ भौतिक स्तर पर तुम्हारे पास सब कुछ है लेकिन तुम्हारी भावना त्याग की है। तुम किसी चीज को अस्वीकार नहीं करते, बल्कि सब कुछ स्वीकार करते हो। धीरे-धीरे तुम जीवन के अन्य सूक्ष्म स्तरों पर भी आध्यात्मिक रत्न प्राप्त करते जाते हो और अनावश्यक कंकड़-पत्थर छूटते जाते हैं। तुम्हारे झोले से कंकड़-पत्थर खाली होते जाते हैं और उनकी जगह रत्न भरते जाते हैं।

इस तरह त्याग केवल छोड़ने की प्रक्रिया नहीं, बल्कि प्राप्त करने और उसके पश्चात् छूटने की प्रक्रिया है। त्याग तभी सफल होता है जब पहले तुम पाओगे और उसके बाद छोड़ोगे। त्याग शब्द से लोग नाहक भयभीत हो जाते हैं कि सब कुछ छोड़ना पड़ेगा। जब तुम सीढ़ी पर चढ़ते हो तो पहले एक पैर ऊपर के पाये को प्राप्त करता है और वहाँ पर अपने आप को स्थिर करता है। जब वह पैर स्थिर हो जाता है, तब नीचे वाला पैर निचले पाये को छोड़कर आगे बढ़ता है। पहले है प्राप्ति, फिर है त्याग।

उसी प्रकार से जब मन स्वस्थ हो जाता है तब मानसिक अस्वस्थता अपने आप छूट जाती है। जब भावना स्वस्थ होती है तब भावनात्मक अस्वस्थता पीछे छूट जाती है। इसलिए त्याग की जो परिभाषा है, वह छोड़ने की परिभाषा नहीं है, बल्कि यह है कि एक चीज को पाओ और उसके बदले में एक चीज को छोड़ो। यह प्रयास हर शिष्य के जीवन में सतत् होते रहना चाहिए।

समर्पण – निवृत्ति-मार्ग का दूसरा आधार है समर्पण। समर्पण दो शब्दों के योग से बना है, सम् एवं अर्पण। जब हम सभी क्षमताओं और प्रतिभाओं को अर्पित कर देते हैं तब वह समर्पण कहलाता है। तुम सब कुछ किसे अर्पित कर सकते हो? केवल ईश्वर या गुरु को। जहाँ तक ईश्वर का प्रश्न है, तुमने उन्हें कभी देखा नहीं, तुम उन्हें जानते नहीं, पर गुरु की उपस्थिति तो प्रत्यक्ष है। उनके साथ ठोस सम्बन्ध है। जब समर्पण का विचार आता है उस समय साधक का मन नहीं रहता। अगर मन रहता तो वह साधक से कहता, 'यह मत दो, वह भी मत दो।' लेकिन मन की अनुपस्थिति में हम अपना सर्वस्व दे सकते हैं। यह इस बात का संकेत है कि गुरु-शिष्य सम्बन्ध में मन के परे जाना होता है। मन की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का अतिक्रमण करना होता है।

तुम्हें मिलारेप्पा की कहानी मालूम होगी। मिलारेप्पा ने अपने आपको पूरी तरह समर्पित कर दिया था। उसे पूरा विश्वास था, 'अगर मैंने अपने आप को पूरी तरह गुरुजी के हाथ सौंप दिया है तो मेरा योगक्षेम अब उनकी जिम्मेदारी है। मुझे फिर किस बात की चिन्ता?' जब समर्पण की बात होती है, उस समय चेले को अच्छी तरह से सोच-विचार कर लेना चाहिए कि वह कहाँ तक अपने आप को समर्पित कर सकता है। समर्पित होने का मतलब अपने आप को अंदर से खोखला कर देना। अर्जुन ने महाभारत युद्ध से पहले श्रीकृष्ण से बहुत प्रश्न किये, लेकिन श्रीकृष्ण ने उनका तब तक कोई उत्तर नहीं दिया जब तक अर्जुन के मुख से यह वाक्य नहीं निकला – *शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।* तब जाकर श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता का उपदेश देते हैं। उसके पहले चुप ही रहते हैं, कुछ कहते नहीं। गुरु को मालूम रहता है कि शिष्य की आंतरिक पात्रता तभी बढ़ती है जब वह अपने आप को अर्पित करता है। जब तक शिष्य अकड़कर खड़ा है, और अपने विचारों को ही व्यक्त करते रहता है, तब तक उसकी आंतरिक पात्रता नहीं के बराबर रहती है। समर्पण का मतलब होता है श्रद्धा से युक्त होकर गुरु या ईश्वर तत्त्व के प्रति अपने आप को अर्पित कर देना। एक बार समर्पण हो जाए, तब फिर चमत्कार होने लगते हैं।

समर्पण का सही मायने में यही मतलब होता है कि तुम अपने मन के परे पहुँकर अपने गुरु के साथ एक सहज, सरल और विनम्र सम्बन्ध विकसित करो। गुरु के रास्ते यह सम्बन्ध फिर ईश्वर तक पहुँचता है। अपने आप को ईश्वर से जोड़ने का क्रम हमेशा साकार होता है। जिसपर भी तुम अपने ध्यान को केन्द्रित करते हो, वह रूप हमेशा साकार होता है। निराकार तो मात्र एक विचारधारा है, और कुछ नहीं। साकार में ही श्रद्धा की उपज होती है, साकार के प्रति ही हम समर्पित हो पाते हैं। साकार के साथ ही आराध्य भाव, अपनत्व की भावना विकसित होती है – ये मेरे इष्ट हैं, ये मेरे आराध्य हैं, ये मेरे गुरु हैं, इनके प्रति मैं श्रद्धावान् हूँ, इनके प्रति मैं अपने आप को समर्पित करता हूँ। मन जब अपनी वासनाओं के बल पर नहीं, आत्मा के बल पर खड़ा रहता है, तब उसे कहते हैं समर्पण। जब मन अपनी वासनाओं के बल पर खड़ा रहता है तब मनुष्य भोग मार्ग पर बढ़ता है, और जब मनुष्य का मन श्रद्धा पर टिका रहता है तब मनुष्य योग मार्ग पर आगे बढ़ता है। और यह शिक्षा

हमें गुरु देते हैं कि किस प्रकार अपने मन को वासनाओं से हटाकर आत्मा से जोड़ सकते हैं। जब हम अपने आप को आत्मा से जोड़ पाते हैं, तब हमारा समर्पण पूर्ण होता है, उसके पहले नहीं।

विश्वास – निवृत्ति-पथ का तीसरा आधार है विश्वास। यह विश्वास बौद्धिक समझ का नहीं, बल्कि हृदय की गहन भावना का परिणाम है। विश्वास होता है गुरु पर और स्वयं पर। गुरु में विश्वास कि वे मेरी नैया को उस पार लगाएँगे, और साथ ही स्वयं पर विश्वास कि मैं गुरु द्वारा कहे निर्देशों के अनुसार चल पाऊँगा।

रामचरितमानस में माता शबरी का वृत्तान्त आता है। जब वे सोलह बरस की थीं, उनके गुरु ने उनसे कहा था कि एक दिन प्रभु श्रीराम तुम्हारी कुटिया में अवश्य पधारेंगे। उन्होंने आगमन का समय नहीं बताया पर उस दिन से माता शबरी हर दिन यही सोचतीं, 'आज वह शुभ दिन है जब प्रभु श्रीराम मेरी कुटिया को धन्य करेंगे।' हर दिन वे श्रीराम के स्वागत की तैयारी करतीं। अपनी कुटिया की सफाई करतीं, फल-फूल एकत्र करतीं और उनका आसन तैयार करतीं। वे अस्सी बरस की हो गयीं, फिर भी यह सब प्रतिदिन करती रहीं। तब जाकर श्री राम उनकी कुटिया में पधारे। चौंसठ वर्षों से वे प्रतिदिन उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। क्या तुम लोग ऐसा कर पाते? तीन दिन बाद ही तुम कह देते, 'जब प्रभु आयेंगे, तब देखी जाएगी। रोज-रोज तैयारी करने से क्या फायदा?' लेकिन माता शबरी को अपने गुरु पर पूरा विश्वास था। गुरु ने कहा था कि श्रीराम एक दिन तुम्हारे यहाँ आयेंगे और वे हर दिन उसी लगन और भावना के साथ प्रभु की राह देखती रहीं। इस उदाहरण से हमें संकेत मिलता है कि हम अपने जीवन में किस प्रकार की मानसिकता विकसित कर सकते हैं, बशर्ते हमारी भावना में गहराई और तीव्रता हो।

त्याग, समर्पण और विश्वास – एक निवृत्ति-मार्गी के लिए ये तीनों आवश्यक हैं, जो उसे जीवन में आगे ले जा सकते हैं। जैसे-जैसे हम इस मार्ग पर आगे बढ़ते हैं, हमारी कामनाएँ, वासनाएँ और महत्त्वाकांक्षाएँ कम होती जाती हैं। मन बन्धन-मुक्त होता जाता है और हम अपनी आध्यात्मिक प्रकृति का पुन: अनुभव करने लगते हैं। फिर जो सम्बन्ध हम स्वयं, गुरु और ईश्वर के साथ स्थापित करते हैं, वह स्थायी एवं शाश्वत होता है। जिस प्रकार ईश्वर की ऊर्जा गुरु में जीवन्त और जागृत रहती है, उसी प्रकार शिष्य के जीवन में भी गुरु की ऊर्जा जीवन्त और जागृत हो जाती है।

– 26 जून 2010, गंगा दर्शन

माँ से स्नेह, पिता से रक्षा, पत्नी से प्रेम और सन्तान से संतोष मिलता है; पर गुरु तो स्नेह, रक्षा, प्रेम और सन्तोष के साथ-साथ मुक्ति भी दे देता है।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

गुरु के प्रति भाव

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

शिष्य प्राय: असमंजस में रहता है कि वह अपने गुरु से किस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करे। वह यह जानने के लिये उत्सुक रहता है कि क्या वह गुरु को एक दयालु, करुणामय पिता के रूप में माने जिनके निकट वह प्यार और संरक्षण हेतु जा सके, या वह उनके साथ एक प्रेमी मित्र जैसा व्यवहार करे जिनके साथ वह अपने अन्तरतम के रहस्यों एवं कष्टों का आदान-प्रदान कर सके।

हम गुरु को प्रेम एवं आनन्द के सार-संग्रह या पुंज के रूप में देखते हैं। हम उनके निकट जाना, उनसे तादात्म्य का अनुभव करना एवं सुखद सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। किन्तु, जब हम ऐसा करना चाहते हैं तो इस प्रक्रिया में अवरोध का अनुभव करते हैं और अपने विचारों, मनोभावों तथा भावनाओं को सम्प्रेषित करने में असक्षम हो जाते हैं।

सर्वप्रथम हमें यह समझना है कि गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध तर्क पर आधारित नहीं है। वास्तव में यदि आप इस सम्बन्ध का विश्लेषण करने एवं कारण खोजने लगें तो आप अन्तत: इसे पूर्णरूपेण अस्वीकार कर देंगे। यह सम्बन्ध पूर्णत: व्यक्तिगत कारणों एवं प्रयोजनों से विकसित होता है और व्यक्तिगत आधार पर ही स्थित होता है। एक सच्चे शिष्य के लिये गुरु में सम्पूर्ण अनुभवमय जगत् समाहित है। वे पिता, माता, मित्र, सम्बन्धी, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री और ईश्वर भी हैं। वे सूर्य और चन्द्रमा, पुष्प और वृक्ष हैं। संक्षेप में, शिष्य के जीवन में जो कुछ है, गुरु में निहित है।

वास्तविक तथ्य यह है कि गुरु वही हैं जो आप उनमें देखते हैं। आपका भाव ही गुरु के बारे में आपके अनुभव का निर्धारण करता है। यदि आप उन्हें असीम, अनन्त, शाश्वत अनुभव के रूप में समझते हैं तो आपके लिये वे वैसे ही हैं। किन्तु यदि आप उन्हें एक सामान्य व्यक्ति मानते हैं तो आप उनमें अन्तर्निहित देवत्व का दर्शन करने में सदैव विफल होंगे। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे एक ईश्वरीय सत्ता

नहीं हैं, बस इतना कि आप उसे नहीं देख सकते हैं। एक अन्धे व्यक्ति के लिये सूर्य का कोई अस्तित्व नहीं होता।

गुरु एक स्वच्छ दर्पण के समान होते हैं, जिसमें आप अपना प्रतिबिम्ब देख सकते हैं। वे स्वयं में एक विशुद्ध, उज्ज्वल, देदीप्यमान् आत्मा हैं। आप गुरु में जो कुछ देखते हैं, वह आपके अपने व्यक्तित्व का ही प्रक्षेपण है। तथापि उनकी शारीरिक उपस्थिति के कारण हम प्राय: यह निश्चय नहीं कर पाते कि उनके साथ कैसा सम्बन्ध स्थापित करें। इस समस्या के समाधान हेतु शास्त्रों में कुछ उदाहरण मिलते हैं जो शिष्य को मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं। तदनुसार वह अपनी भावनाओं और शक्ति को गुरु की ओर प्रवाहित कर सकता है और अन्तत: एक सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।

भक्ति गुरु-शिष्य सम्बन्ध का आधार है। यही मूल सिद्धान्त है। भक्ति के बिना आप गुरु के साथ पूर्ण सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते हैं। इस भक्ति को उत्पन्न करने एवं यथार्थ रूप देने के लिये शिष्य शास्त्रों द्वारा निरूपित चार भावों में से किसी एक का उपयोग कर सकता है। ये भाव हमारे दैनिक जीवन की भावनाओं और मनोभावों से जुड़े होते हैं, इसलिये उन्हें अभिव्यक्त करना आसान है।

सर्वप्रथम दास्यभाव आता है, जहाँ शिष्य एक निष्ठावान्, आज्ञाकारी सेवक है और गुरु उसके स्वामी। समर्पित सेवक का एकमात्र उद्देश्य होता है अपने स्वामी द्वारा दिये गये कार्य को पूर्णता से सम्पादित करना। इसी प्रकार शिष्य भी गुरु के कार्य के प्रति अपने को समर्पित करता है। शिष्य के लिये कोई भी कार्य बहुत दुष्कर नहीं होता। वह इस बात का ख्याल नहीं करता कि उसकी सेवा के बदले गुरु दयालुतापूर्ण और प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं या उसकी भर्त्सना करते हैं। सेवा करना उसका कर्त्तव्य है, वह सिर्फ इतना ही जानता है और इसी बात के लिये सतर्क रहता है। इस भाव का सर्वोत्तम उदाहरण श्रीराम और हनुमान के सम्बन्धों में मिलता है। सेवक शिष्य गुरु के प्रयोजन या निर्णय पर सन्देह नहीं करता। वह सब कुछ गुरु पर छोड़कर सिर्फ आज्ञापालन करता है।

द्वितीय है वात्सल्य भाव, अर्थात् पिता-पुत्र या पिता-पुत्री के बीच का भाव। हम जन्म से ही अपनी पारिवारिक भावनाओं से मजबूती से जुड़े होते हैं। ये हमारे अन्दर स्वाभाविक रूप से उभरती हैं और इसलिये इस वात्सल्य भाव के अधिक विश्लेषण की आवश्यकता नहीं है। भारत में पिता ज्ञान, विवेक और अनुभव के प्रतीक माने जाते हैं और पुत्र उन्हें उचित सम्मान, प्रेम और निष्ठा प्रदान करता है। पिता के शब्द पवित्र माने जाते हैं और बच्चे उनके प्रति अपने प्रेम और समर्पण के प्रमाणस्वरूप उनकी इच्छाओं का विरोध नहीं करते। इस सम्बन्ध में सर्वोत्तम उदाहरण के लिये एक बार पुन: हमें रामायण के पृष्ठों को ही उलटना पड़ेगा जहाँ राजा दशरथ और उनके पुत्र राम का सम्बन्ध आदर्श और अनुकरणीय माना

जाता है। राम राजगद्दी के वैध उत्तराधिकारी थे, किन्तु पिता ने उन्हें चौदह वर्षों का वनवास दे दिया और इस प्रकार राज्य से वंचित कर दिया। लेकिन राम ने पिता की अवज्ञा नहीं की। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा, 'राज्य तो क्या, मैं आपके लिये अपना जीवन भी न्योछावर कर सकता हूँ।'

तीसरा है, ईश्वर भाव। यह भक्त और भगवान के सम्बन्ध को उजागर करता है। गुरु अगम्य ईश्वरत्व के द्योतक हैं और शिष्य है उनका विनम्र भक्त। एक भक्त के रूप में शिष्य स्वयं को गुरु-चरणों में न्योछावर कर देता और उनका प्रेम एवं संरक्षण चाहता है। वह एक भक्त की भूमिका अपना लेता है, और गुरु के प्रति भक्तियोग का अभ्यास करता है। शिष्य एक लोकोत्तर सत्ता के रूप में गुरु का पूजन करता है और अन्ततः स्वयं को उनमें लीन कर देता है। श्री रामकृष्ण परमहंस और माँ काली के सम्बन्ध में यही स्थिति देखी गयी थी। रामकृष्ण माँ काली से अपनी देवी माता के रूप में प्रेम करते थे। वे उनकी मूर्ति को स्नान करवाते, उनके सामने नृत्य करते, अगरबत्ती जलाते, उन्हें भोजन प्रदान करते और उनके सामने एक छोटे बच्चे की तरह फूट-फूट कर रोते थे। अन्ततः वे अपने क्षणभंगुर अस्तित्व के प्रति अपनी सजगता का अतिक्रमण करने में सफल हो गये और माँ के साथ एकाकार हो गये।

चौथा है, माधुर्य भाव या सखा भाव। यह दो मित्रों के बीच का भाव है जिनमें पारस्परिक प्रेम और आसक्ति के कारण एकत्व स्थापित हो जाता है। राधा और कृष्ण, अर्जुन और कृष्ण तथा कृष्ण और गोपियाँ इसी भाव से आपस में बँधे हुए थे। कृष्ण और गोपियाँ छोटे बच्चों की तरह क्रीड़ा करते थे, किन्तु वे एक-दूसरे में पूर्णतः तल्लीन थे। राधा अपने जीवन में सिर्फ एक बार, बचपन में कृष्ण से मिली, किन्तु उसकी चेतना पर उस मिलन की इतनी गहरी छाप पड़ी कि वह उन्हें कभी भूल न सकी। भारत में आज भी हम राधा के बिना कृष्ण की कल्पना स्वप्न में भी नहीं कर सकते।

गुरु से सम्बन्ध स्थापित करने हेतु शिष्य अपने लिये इनमें से किसी एक भाव का चयन कर लेता है। ऐसा वह अपनी आवश्यकता एवं व्यक्तित्व के अनुसार करता है तथा इसे यथासंभव उच्चतम अवस्था तक विकसित करता है। यदि वह एक मित्र की आवश्यकता महसूस करता है तो उसे गुरु को अपना मित्र मानना चाहिये। और यदि वह पितृसुलभ प्रेम से वंचित रहा है, तो गुरु उसके माता-पिता हो सकते हैं। यदि शिष्य स्वयं को पूर्णरूपेण गुरु को समर्पित करना चाहता है, तो वह अपने को उनका दास मान सकता है।

यह सब कुछ आपकी अपनी मूल आवश्यकता पर तथा इस बात पर निर्भर रहता है कि आपके व्यक्तित्व का कौन-सा क्षेत्र सर्वाधिक सशक्त है तथा सहजता से अभिव्यक्त हो सकता है। इस बात का कोई विशेष महत्त्व नहीं है कि आप अपने लिये किस भाव का चयन करते हैं, मुख्य बात यह है कि यह भाव स्वतः

प्रस्फुटित हो एवं आपके व्यक्तित्व तथा भावनाओं को स्वाभाविक अभिव्यक्ति का मार्ग प्रदान करे।

ये भाव संन्यासी शिष्य को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के शिष्यों के लिये प्रासंगिक हैं। संन्यासी के लिये गुरु सदैव सर्वव्यापी सत्ता का द्योतक है। उसके लिये गुरु परम सत्य का प्रतिरूप है, जिसकी अनुभूति प्राप्त करने के लिये वह सतत् प्रयत्नशील है।

इस प्रकार शिष्य गुरु से अपने सम्बन्ध को सशक्त बनाने के लिये किसी विशेष भाव का उपयोग एक उपकरण के रूप में करता है। उसके द्वारा अपनाया गया यह

भाव उसके सांसारिक व्यक्तित्व से मेल खाता है और इसलिये वह इसे सहजता से समझ सकता और प्रकट कर सकता है। यद्यपि शिष्य किसी एक भाव का उपयोग एक उपकरण के रूप में करता है, उसे गुरु से किसी बात की अपेक्षा नहीं करनी चाहिये तथा सावधानीपूर्वक निष्काम भाव बनाये रखना चाहिये।

गुरु आपके इच्छानुसार आपके साथ व्यवहार करें या न करें, किन्तु उनके प्रति आपका प्रेम, भक्ति एवं नि:स्वार्थ भाव तनिक भी प्रभावित नहीं होना चाहिये। एक बच्चा आजीवन अपनी माँ को प्यार करता है, चाहे वह उसके प्रति कैसा भी व्यवहार करे, क्योंकि उससे उसका बन्धन बाह्य सम्बन्ध से अधिक गहरा है। इसी प्रकार शिष्य भी गुरु के प्रति अपना सद्भाव बनाये रखने का प्रयास करता है। इस प्रसंग में वह अपने तथा गुरु के बीच के किसी व्यवहार से प्रभावित नहीं होता। कभी-कभी गुरु के प्रति एक निश्चित भाव अपनाते समय शिष्य उन्हें अपनी जटिलताएँ व कुण्ठाएँ हस्तांतरित करने की ओर भी प्रवृत्त होता है। यदि कठोर माता-पिता से मिले कष्टों के कारण वह असुरक्षित हो गया है तो वह गुरु से अपने सम्बन्ध में भी असुरक्षा का अनुभव करता है। ऐसा नहीं होना चाहिये। शिष्य ने गुरु से इस हेतु सम्पर्क स्थापित किया है कि वह अपने निम्न, नकारात्मक गुणों का अतिक्रमण कर सके, न कि उनमें डूबा रहे। अत: शिष्य को इस बिन्दु पर सदैव सतर्क रहना चाहिये।

गुरु एक ऐसे व्यक्ति के प्रतीक हैं जिनकी ओर आप अपनी भावनाओं को निर्देशित कर सकते हैं ताकि वे उच्चतर एवं सकारात्मक अनुभवों की ओर प्रवाहित हो सकें। उद्देश्य है आपको अपनी सीमाओं से मुक्त करना, न कि बन्धन में डालना। गुरु अभिव्यक्ति की सीमाओं से परे हैं। यदि सीमा या अवरोध कहीं है तो वह आपके अन्दर है और आपको गुरु के प्रति अपने निष्काम प्रेम की सहायता से इसे निर्मूल करने का प्रयास करना है।

अपने ध्यान के अभ्यासों में भी आप गुरु का वैसा चित्र विकसित कर सकते हैं जैसा कि आप उन्हें देखना चाहते हैं – पिता, मित्र, स्वामी या ईश्वर के रूप में। आप ध्यानावस्था में उनसे बातें कर सकते हैं। आप कल्पना कर सकते हैं तथा अपने मन में उनसे अपने इच्छानुसार सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। गुरु आपकी चेतना के प्रतीक हो जाते हैं। वे आपकी सजगता को धीरे-धीरे ऊपर उठाते हुए महत्तर, भव्यतर ऊँचाइयों तक पहुँचाते हैं।

हम में से प्रत्येक व्यक्ति के भीतर भावनाएँ हैं। यदि उनका रचनात्मक उपयोग न किया जाये तो अन्तत: वे नष्ट होने लगती हैं तथा निराशा और विषाद का कारण बन जाती हैं। किन्तु यदि आप इन भावनाओं को उपर्युक्त विधि से गुरु की ओर निर्देशित करें तो इसका तात्पर्य यह होगा कि आप अपनी शक्ति को उच्चतर अनुभव की ओर प्रवाहित और रूपान्तरित कर रहे हैं तथा ऊर्ध्वगामी बना रहे हैं। और वह उच्चतर अनुभव है गुरु के साथ एकत्व का अनुभव।

उदार बनो

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

कृपण और क्षुद्र स्वभाव वालों को जीवन में कभी आनन्द या शान्ति प्राप्त नहीं होती। जेब में सैकड़ों रुपयों के नोट होंगे, किन्तु रेलवे स्टेशन पर कुली के साथ दो पैसे के लिए निर्लज्जतापूर्वक आधे घण्टे बकवास करना उनका स्वभाव-सा हो जाता है। स्वयं स्वादिष्ट पदार्थ खाते हुए यदि नौकरों को उनका उपभोग करते हुए देख लें तो उनका हृदय जलने लगता है। अपने लिए अच्छी वस्तुएँ चुनकर, बुरी वस्तुएँ नौकरों के लिए छोड़ देना नीचता और कृपणता का ही द्योतक है। कंजूस लोगों का धन या तो उनके पुत्रों द्वारा हड़प लिया जाता है या फिर डॉक्टरों-वकीलों के बिल चुकाने में ही व्यय हो जाता है। धनसम्पन्न होने पर भी वे जीवन में आनन्द की अनुभूति नहीं कर पाते। वे अपनी धन-राशि के भोक्ता नहीं, रखवाले मात्र होते हैं।

ऐसा ही एक कंजूस लड़का था रामकृष्ण। वह दसवीं कक्षा का छात्र था। परीक्षा के दिन चल रहे थे। उसकी अंग्रेजी कमजोर थी, इसलिए उसने गणित के बजाय अंग्रेजी पर अधिक ध्यान दिया। अब गणित की परीक्षा से पहले वह काफी चिन्तित हो गया। उसकी तैयारी नहीं के बराबर थी। परीक्षा में फेल होना निश्चित था।

उसके घर के पास ही में एक मंदिर था। उसे विश्वास था कि ईश्वर कुछ भी कर सकते हैं। इसलिए गणित परीक्षा के एक दिन पहले वह मंदिर गया और ईश्वर से प्रार्थना करने लगा, 'हे ईश्वर, मुझे गणित की परीक्षा में सफलता मिले, ऐसा आशीर्वाद दो। मैं आपको बीस रुपये का प्रसाद चढ़ाऊँगा।'

अगले दिन वास्तव में चमत्कार हो गया। प्रश्न-पत्र के सभी प्रश्न उसके लिए अत्यन्त सरल थे। उसने सभी प्रश्नों का ठीक-ठीक हल दिया। उसे पूरा विश्वास था कि वह गणित में पास ही नहीं, बहुत अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होगा।

सभी प्रश्न हल कर लेने के बाद भी उसके पास कुछ समय बचा था। उसने सोचा कि क्यों न इस समय का सदुपयोग करूँ और प्रसाद सामग्री की एक सूची

बना लूँ। तुरन्त उसने एक सूची बना डाली, जिसका योग कुल बीस रुपये था। फिर वह बैठा-बैठा सूची की वस्तुओं पर विचार करने लगा। उसने सोचा कि एक-दो वस्तुएँ आवश्यक नहीं हैं, क्यों न उन्हें प्रसाद से हटा दूँ? इस प्रकार प्रसाद की कीमत घटकर पन्द्रह रुपये हो गई। उसने सूची पर दुबारा विचार किया और अपने आप से कहा, 'क्या ईश्वर कोई छोटा-मोटा व्यवसायी है जो पन्द्रह रुपये के प्रसाद के बदले में परीक्षा में सफलता देता फिरता है? नहीं, मेरा ध्यान प्रसाद के मूल्य पर बिल्कुल नहीं जाना चाहिए। आखिर भगवान को प्रसाद चढ़ाने के बाद मैं और मेरे मित्र ही तो उसे खाएँगे। फिर क्यों इतनी फिजूलखर्ची करनी?'

इस तरह सोचते-विचारते प्रसाद का मूल्य घटकर पाँच रुपये हो गया। अंतिम बार पुनर्विचार करने के बाद वह मात्र दो रुपये ही रह गया। उस समय अचानक रामकृष्ण को गीता का एक श्लोक स्मरण हो आया। उसने सोचा, 'भगवान श्री कृष्ण ने गीता में क्या स्पष्ट रूप से नहीं कहा है कि वे श्रद्धा और भक्ति से अर्पित किये गये एक पत्ते, फूल, फल, यहाँ तक कि मात्र जल को भी प्रसन्न मन से ग्रहण कर लेते हैं। आखिर श्रद्धा और भक्ति ही तो मायने रखती है, पैसे नहीं। जो पुण्यलाभ मुझे बीस रुपये का प्रसाद चढ़ाने से मिलेगा, वही श्रद्धा और भक्ति के साथ सिर्फ दो केले अर्पित कर देने से भी तो प्राप्त हो सकता है।'

वह इस तरह विचार कर ही रहा था कि घण्टी बज गई और परीक्षा संचालक उसके पास उत्तर पुस्तिका लेने आ पहुँचा। रामकृष्ण ने खुशी-खुशी उत्तर पुस्तिका दे दी और अपने घर की ओर चल पड़ा। उसे पूरा विश्वास था कि उसे इस विषय में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त होगी।

घर पर पिताजी उसका इन्तजार कर रहे थे। उसके हाथ में रखे कागजों को देखकर पिताजी भौंचक्के रह गए और बोले, 'अरे रामकृष्ण! यह क्या? तुम उत्तर पुस्तिका क्यों घर ले आए?' रामकृष्ण ने ज्यों ही उन कागजों पर नजर डाली, त्यों ही उसकी बोलती बन्द हो गई। उसे अपनी भारी भूल का अहसास हुआ। घण्टी बजने पर उसने हड़बड़ी में प्रसाद की सूची वाले कागज संचालक को सौंप दिए और स्वयं उत्तर पुस्तिका घर लेता आया। अब उसे गणित प्रश्न-पत्र में शून्य मिलना निश्चित हो गया!

रामकृष्ण बिलख-बिलख कर रोने लगा, 'अरे पिताजी, ईश्वर की कृपा से मैंने परीक्षा में सभी प्रश्नों के सही उत्तर दिए थे। परन्तु मेरे कंजूस मन में कपट आ गया और मैं ईश्वर को धोखा देने की कोशिश करने लगा। उसका यह परिणाम हुआ कि मैं अपनी उत्तर पुस्तिका ही घर ले आया।'

शिष्यों और साधकों! तुम गुरु या ईश्वर को धोखा नहीं दे सकते। यदि जीवन में गुरु-कृपा और ईश्वर-कृपा पाना चाहते हो तो कृपणता और नीचता को अपने स्वभाव से पूर्णतया निष्कासित करो। उसके स्थान पर पूरी तरह उदार, दानशील और त्यागमय बनने का प्रयास करो। तुम्हें अवश्य सफलता, सुख और समृद्धि प्राप्त होगी।

गुरु की प्रतीक्षा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

गुरु ने शिष्य को चलने के लिए कहा था
शिष्य ने 'आऊँगा' कह कर गुरु को आगे भेज दिया
और स्वयं बैठा रहा, बैठे हुए के साथ रमता रहा
गुरु ने बहुत दूर जाकर प्रतीक्षा की
शिष्य न आया
वह दूसरे मार्ग पर चला गया था
रात हो गई, सबेरा हुआ, गुरु वापस
वहाँ देखा चेला न था
खोजा बहुत, अनेकों में खोजा
अनेकों-अनेकों में खोजा
चेला न मिला ...

सूर्योदय हुआ, सूर्य ऊपर चढ़ा
सहसा चेला पकड़ में आ गया
पर वह हाव-भाव, वेश और नाम सब बदल चुका था
संग बदल चुका था, रंग बदल चुका था
ढंग बदल चुके थे और उसके अंग भी बदल चुके थे
गुरु ने पहचाना भी
पर करता भी क्या
परदेश तो गुरु के विभाग से बाहर की चीज थी
गुरु को उसने नहीं पहचाना – क्योंकि
चेला का पथ दूसरा, शपथ दूसरी
रथ दूसरा और दिन भी दूसरा ...
गुरु ने तत्त्व के गीत गाये,
चेला ठेला गया।
गुरु ने सत्य को जगाया,
चेला और ठेला गया,
और कुछ याद आया
उस मार्ग का नजारा झलका।
एक स्वप्न-सा आया और गया,
पता नहीं कौन कहेगा चेला समझा कि नहीं ...

गुरु से हृदय के तार जोड़ना

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

गुरु पूर्णिमा के अनुष्ठान में अपने आप को गुरु के साथ समस्वरित करना, अपनी फ्रिक्वेन्सी की ट्यूनिंग करना बहुत आवश्यक है। जैसे रेडियो के डायल को घुमाकर उसे ट्यून करते हैं, वही चीज हमें अपने मन के साथ करनी है। लोग यहाँ आते हैं, लेकिन अपने मन की फ्रिक्वेंसी को जोड़ नहीं पाते हैं। बैठते हैं यहाँ पर, लेकिन दिमाग रहता है कहीं और। किताबें खुली हैं सामने, लेकिन विचार कहीं और का है कि मैं स्वामीजी से कब मिलकर उनको अपनी परेशानी बतला सकूँ। वही चीज दिमाग में घूमती रहती है। मतलब आप अपने में ही खोए हो, अपने से ही ट्यून्ड हो, गुरु के प्रति नहीं। आप अपने विषयों में ट्यून्ड हो, अध्यात्म में नहीं। इसलिये इस बात को अच्छे से समझना आवश्यक है कि हम अपने हृदय के तारों को गुरु से जोड़ सकें, अपनी फ्रिक्वेंसी को गुरुतत्त्व की फ्रिक्वेंसी के समीप लाने का प्रयास करें।

इसके लिए चार यमों और नियमों का पालन आवश्यक है। पहले दो हैं मन:प्रसाद और नमस्कार, क्योंकि ये दो शिक्षाएँ स्वामी शिवानन्द जी के जीवन से सम्बन्ध रखती हैं। अगर आप स्वामी शिवानन्द जी के चरित्र को पढ़ेंगे, उनके चित्रों को देखेंगे, उनकी वाणी का श्रवण करेंगे तो आपको मालूम पड़ेगा कि वे हमेशा प्रसन्न मुद्रा में रहते थे, हमेशा हँसते थे, हमेशा मुस्कुराते थे। उनके चेहरे पर कभी चिन्ता, क्रोध, भय या निराशा की रेखाएँ दिखलाई नहीं दीं। वे हमेशा प्रसन्नता का ही वितरण किया करते थे। दूसरा गुण था विनम्रता। वे सबके सामने सिर झुकाते थे, चाहे वह बड़ा आदमी हो या छोटा, चाहे बूढ़ा हो या जवान, क्योंकि वे शरीर को नहीं देखते थे, बल्कि शरीर के भीतर छिपे आत्म-तत्त्व को देखा करते थे और उसको प्रणाम करते थे। इस प्रकार प्रसन्नता और विनम्रता हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी के जीवन के दो प्रमुख गुण रहे हैं, और ये प्रथम यम और नियम हैं जिन्हें इस गुरु पूर्णिमा के दौरान पालन करने की आवश्यकता है। अगर विपरीत परिस्थिति भी मिले तो एक बार मुस्कुराना जरूर। जहाँ तक हो सके अपने मन में हर्ष-उल्लास को लाना है और अपनी आत्मा में चैतन्यता को लाना है। और साथ में विनम्रता का अभ्यास, क्योंकि मन:प्रसाद और विनम्रता, जो हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी के जीवन में चरितार्थ दिखलाई देते हैं, वे अहंकार का नाश करने वाले तत्त्व हैं। जब तक मन में अहंकार है तब तक तुम कभी प्रसन्न नहीं रह पाओगे, जब तक मन में अहंकार है तुम कभी विनम्र नहीं रह पाओगे। गुरु पूर्णिमा महोत्सव के इन चार दिनों के लिये अपने अहंकार को नीचे करके स्वामी शिवानन्द जी की प्रसन्नता और विनम्रता की शिक्षा को अपने जीवन में लागू करो।

दूसरा यम और नियम जो स्वामी सत्यानन्द जी के जीवन में चरितार्थ दिखलाई देता है, वह है भावशुद्धि और श्रद्धा। जब भाव शुद्ध रहता है तब हृदय और मन में विकार उत्पन्न नहीं होते, उस समय लक्ष्य स्पष्ट रहता है, कर्म स्पष्ट रहता है, विकल्प और भ्रांति का स्थान नहीं रहता। भावशुद्धि के कारण मनुष्य का जीवन अपने आप पवित्र एवं शुद्ध बनता है, और जब भाव शुद्ध हो जाता है तो फिर श्रद्धा अपने आप पनपती है, प्रकट होती है। इन दो गुणों को हम अपने गुरु, श्री स्वामीजी के जीवन में देखते हैं। उनका भाव शुद्ध था, उनका जीवन पवित्र था, उन्होंने दूसरे का कभी अहित नहीं सोचा। ऐसे व्यक्ति हमेशा दूसरों के लिये प्रेरणा का काम करते हैं। जिनका भाव शुद्ध होता है वे व्यक्ति ही वास्तव में गुरु भी होते हैं। ये चार गुण पहचान हैं एक ऐसे व्यक्तित्व के जो जागृत, आध्यात्मिक, जीवन्त और प्रेरक है।

मन:प्रसाद, विनम्रता, भावशुद्धि और श्रद्धा – आज आवश्यक है कि हम इन्हें अपने जीवन में अपनायें। अहंकार के लिये स्वामी शिवानन्द जी ने मन:प्रसाद और विनम्रता के बारे में बतलाया, हृदय को अपने आराध्य का स्थान बनाने के लिये हमारे गुरुजी ने भावशुद्धि और श्रद्धा को बतलाया। भावशुद्धि तथा श्रद्धा हृदय

की अभिव्यक्ति और भावना है। इस तरह दिल और दिमाग, इन दो की बात हमारे गुरुओं ने की है और हाथ की बात अब हम करते हैं। गंगा दर्शन, जहाँ पर योग की शिक्षा होती है वह मस्तिष्क है, कसरत है। रिखियापीठ, जहाँ पर सेवा प्रधान है, वह हृदय है और संन्यास पीठ हाथ है। इस तरह मस्तिष्क, हृदय और हाथ, अर्थात् बुद्धि, भावना और कर्म का सुन्दर समन्वय है। जो केवल दिल से जुड़ता है वह मस्तिष्क और हाथ को उपयोग नहीं कर पाता, और जो सिर्फ मस्तिष्क और हाथ से जुड़ता है वह हृदय को उपयोग नहीं कर पाता। इसलिये सभी में सामंजस्य और तालमेल का होना आवश्यक है, और यही हमारी गुरु-परम्परा की शिक्षा भी है।

गुरु पूर्णिमा के इस चार-दिवसीय कार्यक्रम में आप लोग भी इन चार नियमों का पालन चार दिनों तक कीजिये – प्रसन्न रहिये, विनम्र बनिये, अपने भाव-विचार-व्यवहार-कर्म को पवित्र बनाइये और अपने भीतर श्रद्धा के भाव को अटूट रखिये। द्वेष, लोभ, मोह, स्वार्थ, मात्सर्य आदि जो मानव समाज के भीतर कूट-कूट कर भरे हुये हैं उनको हटाओ और आन्तरिक शान्ति के संदेश का प्रचार करो – हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी का यही लक्ष्य था, यही संदेश था।

– 24 जुलाई 2018, गुरु पूर्णिमा महोत्सव, पादुका दर्शन

शिष्यत्व ही योग का प्रारम्भ है

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आपके हृदय में ज्योंही योग मार्ग पर चलने की लालसा उत्पन्न हो, चाहे वह शारीरिक-मानसिक कल्याण के भाव से हो या आध्यात्मिक जागृति के लिए, आप इस तथ्य को अवश्य स्वीकार करें कि आपको सर्वप्रथम शिष्य बनना पड़ेगा। तभी आप योग मार्ग पर आरूढ़ हो पायेंगे।

शिष्य एक खुले पात्र के जैसा है जिसमें वर्षा की फुहारें गिरती हैं और धीरे-धीरे यह पात्र भर जाता है। फिर भी एक उत्तम पात्र होने के लिए उसका स्वच्छ होना आवश्यक है और यदि उसमें कोई छिद्र है तो उसे भी अवश्य बन्द किया जाना चाहिए। अपने व्यक्तित्व की त्रुटियों को दूर किये बिना तथा उसकी पूर्ण सफाई किये बिना सिर्फ यह सोचना पर्याप्त नहीं है कि अब आप एक शिष्य होने जा रहे हैं। ये कार्य एक दिन में या कुछ सप्ताहों में पूर्ण नहीं होते, शिष्यत्व में पूर्णता प्राप्त करने में अनेक वर्ष लगते हैं।

शिष्य होने की इच्छा करना एक बात है, पर आदर्श शिष्य होना एक पूर्णतया भिन्न प्रक्रिया है। प्रारम्भ से ही यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि आप अपने व्यक्तित्वरूपी पात्र को सिर्फ अमृतमयी फुहारों से भरने की अपेक्षा ही न करें, बल्कि आपके जीवन के प्रत्येक क्षण के समस्त प्रयास निश्चित रूप से मात्र दो दिशाओं में निर्देशित होने चाहिए – पात्र की सफाई और छिद्रों की मरम्मत।

इस बिन्दु को एक दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। एक बार एक संन्यासी ने एक भक्त के द्वार पर आकर भिक्षा माँगी। वह व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसने संन्यासी को स्वादिष्ट भोजन कराया। बदले में उसने मन्त्र-दीक्षा की माँग की और स्वयं को अपना शिष्य बना लेने का निवेदन किया। संन्यासी ने कहा, 'सेवा द्वारा अपने को योग्य बनाओ और जब मैं अगली बार आऊँगा तो तुम्हें दीक्षित करूँगा।'

एक वर्ष बीतने के बाद संन्यासी पुन: उसके यहाँ आए और भिक्षा की माँग की। वह उन्हें देखकर बहुत खुश हुआ तथा उनके भिक्षा पात्र में रुचिकर भोजन डालकर उनसे पुन: मन्त्र के लिए आग्रह किया। 'अगली बार', संन्यासी ने उत्तर दिया।

एक वर्ष और बीत गया, संन्यासी पुन: उस द्वार पर आए, भिक्षा प्राप्त की। मन्त्र के लिए फिर आग्रह हुआ और उन्होंने दुबारा वही उत्तर दिया। इस प्रकार बारह वर्ष बीत गए, बारह बार वे वहाँ आए और प्रत्येक बार उनसे मन्त्र हेतु निवेदन किया गया। अन्तत: वह गृहस्थ अपना धैर्य खो बैठा। उसने रुखाई से पूछा, 'आप मुझे कब मन्त्र देने जा रहे हैं? मैं आपको पिछले बारह वर्षों से भिक्षा देता आ रहा हूँ और आप इतने निष्ठुर हैं कि मुझे एक मन्त्र भी नहीं दे सकते।'

तत्क्षण संन्यासी ने अपने भिक्षा पात्र में गृहस्थ द्वारा परोसी गई स्वादिष्ट भोज्य-सामग्रियों पर पेशाब कर दिया। यह देखकर वह चकित रह गया। 'आप ऐसा क्यों कर रहे हैं?' वह चिल्लाया।

'यह बिल्कुल वैसा ही है जैसा तुम करना चाहते हो। तुम्हारा हृदय स्वच्छ और तैयार नहीं है, और तुम चाहते हो कि मैं तुम्हें दीक्षा और मन्त्र दूँ। मन्त्र की तुम्हारे लिए क्या उपयोगिता होगी? सबसे पहले सेवा द्वारा अपने हृदय का शुद्धिकरण करो और जब तुम्हारा हृदय शुद्ध हो जायेगा, तब जिस प्रकार तुम मुझे भिक्षा देते हो मैं तुम्हें मन्त्र-दीक्षा दूँगा।'

यही कारण है कि विश्व के प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय में सेवा पर बल दिया जाता है। सेवा द्वारा आप अपने अहंकार को दूर करने में सक्षम होते हैं जो गुरु और शिष्य, मनुष्य और ईश्वर तथा मनुष्य और मनुष्य के बीच का एक बड़ा अवरोध है। इस अहंकार को सर्वप्रथम दूर करना ही होगा।

अनुशासन और सेवा

सन् 1947 में, जब मैं अपने गुरु स्वामी शिवानन्द सरस्वती के साथ रह रहा था, मैंने आश्रम छोड़ने और स्वतंत्र जीवन बिताने का निर्णय किया। स्वामीजी ने जब मेरी इस योजना के बारे में सुना तो मुझे अपने पास बुलाया। उन्होंने पूछा, 'तुम क्यों जा रहे हो?' मैंने उत्तर दिया, 'अब मैं हठयोग, राजयोग, कुण्डलिनी योग – सब कुछ जानता हूँ और इनका अभ्यास अपने आप कर सकता हूँ।' उन्होंने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया, 'नहीं, तुम्हें अपने अहंकार, व्यक्तित्व में व्याप्त अज्ञान तथा मन के मैल

को दूर करना होगा और स्वयं को एक बिन्दु में परिणत करना होगा। तभी तुम्हारे अन्दर से प्रकाश प्रकट होगा।'

इसके आगे जो कुछ हुआ वह एक लम्बी कहानी है। मैंने अपने व्यक्तित्व की गहराई में जड़ जमाई हुई वासनाओं, जटिलताओं तथा अवरोधों पर विजय पाने के लिए बारह वर्षों तक आश्रम में रहकर दिन-रात घोर परिश्रम किया। अपने प्रशिक्षण की अवधि में मैं एक नर-कंकाल में परिणत हो गया था। आश्रम में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति मेरी पसलियों की गिनती किया करता था तथा मुझसे पूछता था कि मैं किस प्रकार का ब्रह्मचारी हूँ। मेरा शरीर और मन सेवा में इस तरह पूर्णतया तल्लीन था कि ऐसा एक भी क्षण नहीं था जब मैं विचार, कार्य या स्वप्न में ब्रह्मचारी नहीं था। इस प्रकार अहंकार को दूर भगाने के लिए मैंने अनेक वर्ष गुरु के सान्निध्य में कठोर अनुशासन, कष्ट और तपस्या में बिताये और इसके परिणामस्वरूप जीवन में सुख, शांति तथा आत्मज्ञान की उपलब्धि हुई।

संसार में दो प्रकार के शिष्य पाये जाते हैं – संन्यासी तथा सामान्य या गृहस्थ शिष्य। संन्यासियों के लिए, जिन्होंने अपने परिवार तथा समाज का परित्याग करके उनसे अपने समस्त सम्बन्धों का विच्छेद कर लिया है, शिष्य होने का एकमात्र मार्ग गुरु सेवा के प्रति अपने को पूर्णरूपेण समर्पित करना ही है। अनुशासन एवं समझदारी में पूर्णता आने पर ही परमानन्द की प्राप्ति होती है।

शिष्यत्व के सोपान

दूसरे प्रकार के शिष्यों में सामान्य या गृहस्थ लोग आते हैं। उन्हें सदैव यह स्मरण रखना चाहिए कि जो जीवन, मार्ग, परिवार, बच्चे और उत्तरदायित्व उनके लिए विहित और निर्दिष्ट हैं वे सभी शिष्यत्व के सोपान हैं। उनके कर्मों द्वारा जो जीवन उनके लिए निर्धारित किया गया है, वह सांसारिक पदार्थों के भोग, उपलब्धि और परिग्रह के लिए नहीं है। जो जीवन उन्हें मिला है तथा जिन परिस्थितियों और घटनाओं से होकर उन्हें गुजरना होता है उन सबका प्रधान उद्देश्य एक शिष्य के व्यक्तित्व एवं गुणों के विकास में सहायक होना है।

प्रत्येक गृहस्थ का उद्देश्य और लक्ष्य, चाहे वह जिस किसी भी परिस्थिति में हो, प्रतिक्षण अपना शुद्धिकरण, प्रशिक्षण और रूपान्तरण होना चाहिए। चाहे बच्चे की शिक्षा या विवाह हो या परिवार से सम्बन्धित कोई विशेष कर्त्तव्य, किसी शिशु का जन्म या किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु, गरीबी, समृद्धि, प्रेम-घृणा, लाभ-हानि, ईर्ष्या, लोभ या संवेदना – ये समस्त चीजें व्यक्ति के जीवन में उसे एक शिष्य बनाने हेतु ही आती हैं। प्रतिक्षण जो भी घटित हो रहा है उसके साथ आदमी को स्वयं को समायोजित और अनुशासित करने का प्रयास करना चाहिए। अत: एक गृहस्थ का जीवन उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना किसी साधु-संन्यासी का।

शिष्य के दक्ष या तत्पर होते ही उसके जीवन में गुरु का पदार्पण होता है। गुरु सिर्फ एक शिक्षक नहीं होते, गुरु का अर्थ होता है प्रकाश, प्रबोधन, प्रभा। जब आप शिष्य बनते हैं तो गुरु पूर्व से ही आपके अन्दर उपस्थित होते हैं, किन्तु आप उन्हें देख नहीं सकते। इसलिए आप किसी व्यक्ति पर गुरुत्व प्रत्यारोपित करते हैं जो आपके बाह्य गुरु बन जाते हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण रहस्य है। व्यक्ति की अचेतन अवस्था को, जो इस समय पूर्ण अन्धकार में है, जाग्रत और प्रकाशित करना है। जो इस अवस्था को जाग्रत कर सके वही गुरु है, दूसरा कोई नहीं।

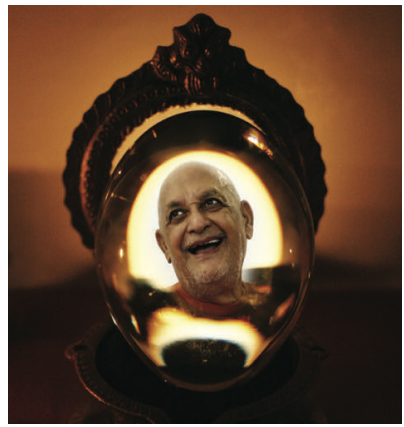

गुरु-मन्त्र

मनुष्य का अचेतन उसके आध्यात्मिक व्यक्तित्व का सबसे गहरा अंग है। गुरु इसे मन्त्र की सहायता से जगाते हैं। भौतिक जगत् में जो कुछ भी विद्यमान है वह मन द्वारा प्रकाशित होता है या समझा जाता है। किन्तु सिर्फ यही जगत् अस्तित्व में नहीं है। अस्तित्व का एक दूसरा स्तर भी है – ब्रह्माण्ड के अन्दर का ब्रह्माण्ड, जिसे आप नहीं देख सकते, क्योंकि यह पूर्ण अन्धकार से आच्छादित है और आप इसे आलोकित करने में सक्षम नहीं हैं। इस पूर्ण अन्धकार को अज्ञान, अविद्या या माया के नाम से जाना जाता है। इससे आपकी अन्तर्निहित चेतना आच्छादित है, इसे दूर भगाना ही होगा। अचेतन के प्रकाशित होने पर आप महान्, अद्भुत चीजों और दृश्यों को देखते हैं। उस अवस्था तक पहुँचने का माध्यम मन्त्र है जो आपको गुरु से प्राप्त होता है।

चेतना के गहरे स्तर को जाग्रत एवं प्रकाशित करने के लिए कोई एक ही आध्यात्मिक अभ्यास पर्याप्त है। मैं अन्य अभ्यास भी सिखाता हूँ और उनके महत्त्व को कम नहीं कर रहा हूँ, किन्तु सत्य यह है कि सिर्फ एक मन्त्र ही पर्याप्त है। इस अभ्यास के द्वारा आपका सम्पूर्ण मन और चेतना परिवर्तित हो जाते हैं, वे मन्त्र के अंग बन जाते हैं। आपके सम्पूर्ण व्यक्तित्व और अस्तित्व में मन्त्र व्याप्त हो जाता है, वही मन्त्र जो आपने सौभाग्यवश अपने गुरु से प्राप्त किया है। तब यह आध्यात्मिक अभ्यास आपके समक्ष जीवन का एक पूर्णत: नवीन और विलक्षण आयाम प्रस्तुत करता है।

जब शिष्य अपने गुरु से मन्त्र ग्रहण करता है तो पहले वह इसे मानसिक रूप से समझता है। फिर वह अपने श्वास के साथ इसका अभ्यास करता है। धीरे-धीरे

उसका व्यक्तित्व मन्त्र से अभिभूत हो जाता है और उसकी चेतना रूपान्तरित होने लगती है। उसकी पूर्व की छितराई हुई, विखंडित चेतना मन्त्र के रूप में संघटित हो जाती है। वह संघटित सार-तत्त्व धीरे-धीरे गहरे अवचेतन में तथा और अधिक गहरे अचेतन में उतरता है, जहाँ यह सर्वोच्च चेतना का द्वार खोलता है।

मन्त्र सिर्फ अक्षरों का समूह या शब्द नहीं है। मन्त्र वे ध्वनियाँ हैं जो प्रबुद्ध ऋषियों और योगियों द्वारा तब सुनी गयीं जब उन्होंने भौतिक स्तरों का अतिक्रमण करके अचेतन का भेदन किया। वहाँ इस पदार्थ जगत् का कोई अस्तित्व नहीं था। प्रारम्भ में उन्होंने कुछ ध्वनियों को सुना जो साधारण मन्त्र बने। किन्तु जब वे और अधिक गहराई में गये तो ये ध्वनियाँ वहाँ नहीं थीं। यहाँ तक कि वे अपने-आप की सजगता भी खो बैठे। तब उनका प्रवेश चेतना की अचेतन अवस्था में हुआ जिसे हम शिवरात्रि कहते हैं और जिसे बाइबिल में 'आत्मा की अन्धेरी रात' कहा गया है। अचेतन अवस्था में प्रवेश करने के बाद उन्होंने अन्य शक्तिशाली ध्वनियों को सुना, जिन्हें बीज मन्त्रों के नाम से जाना गया। संक्षेप में मन्त्रों का यही स्रोत है। हजारों वर्षों से गुरु द्वारा शिष्य को मन्त्र हस्तांतरित किये जाते रहे हैं। ऐसा मन्त्र सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पूर्णतया विस्फोट करके उच्चतर चेतना का द्वार खोल सकता है।

मन्त्र का उपयोग कैसे करें?

शिष्य बनने के साथ ही आध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ होता है और तब गुरु मन्त्र प्रदान करते हैं। अब हम इसके व्यावहारिक पक्ष पर विचार करें। मंत्र का जप बोलकर या मानसिक रूप से कर सकते हैं। इस अभ्यास में प्राय: तुलसी या रुद्राक्ष के दानों की माला का उपयोग किया जाता है, प्रत्येक आवृत्ति के साथ एक दाने को घुमाया जाता है। प्रारम्भिक अभ्यासी मन्त्र का जप माला की सहायता से करते हैं, बाद में वे मन्त्र और अपने हृदय की धड़कन के बीच तादात्म्य स्थापित करते हैं, और अन्त में मन्त्र के प्रति अपनी सजगता को मेरुदण्ड में स्थापित करते हैं।

आप किसी भी मानसिक स्थिति में क्यों न हों, मन्त्र के प्रति आपकी सजगता आपके सामने से ओझल नहीं होनी चाहिए। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि निद्रावस्था या मानसिक चंचलता की स्थिति में भी आप मन्त्र के प्रति सजग बने रहें। मन्त्र के प्रति आपकी सजगता स्थिर, स्थायी और अटूट होनी चाहिए। असंदिग्ध और सुनिश्चित आध्यात्मिक विकास तभी सम्भव है, अन्यथा नहीं। जब आप मन्त्र-जप का अभ्यास कर रहे होते हैं तो प्राय: आपका मन भटकता है तथा जीवन के विभिन्न आयामों के बारे में सोचता है। इससे आतंकित होने की कोई बात नहीं है, यह खतरनाक या अध्यात्म विरोधी नहीं है। किन्तु जब आप आधे घंटे के लिए मन्त्र का अभ्यास करने लगते हैं तो कभी-कभी कुछ क्षणों या लगातार कई मिनटों तक अचेत हो जाते हैं। ऐसे क्षणों में आप मन्त्र, अभ्यास या

अपने प्रति सजग नहीं रहते। आपका मन दोलायमान नहीं है, आप शून्य में हैं। यह शून्यावस्था खतरनाक और अध्यात्म विरोधी है। प्रारम्भ में यह अवधि एक सैकण्ड की होती है किन्तु बाद में यह एक घण्टे की हो सकती है।

अपने अभ्यास के प्रारम्भ से ही आप इस बात के प्रति अवश्य सतर्क रहें कि आपका मन एक क्षण के लिए भी शून्यावस्था में न रहे। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान या ईश्वर-बोध सजगता है, शून्यता नहीं। सजगता पूर्णता है, शून्यता नहीं। अत: अपने को या अपने अस्तित्व को भूलने का प्रयास न करें। अभ्यास की अवधि में ॐ या आपके अपने गुरु मन्त्र की सजगता निरन्तर बनी रहनी चाहिए, आप एक क्षण के लिए भी उसे न भूलें। अभ्यास करते समय आप मन्त्र की ध्वनि, स्पन्दन या स्वरूप पर अपने मन को एकाग्र कर सकते हैं।

मानव शरीर में एक अति सुन्दर और आश्चर्यजनक चीज है और वह है मेरुदण्ड। आप उज्जायी प्राणायाम करते हुए अपने श्वास को लम्बा कीजिये। तब खेचरी मुद्रा लगाइये और इस श्वास का अभ्यास अपने मेरुदण्ड में कीजिए। अब अपने मन्त्र के साथ श्वास का तादात्म्य स्थापित कीजिए तथा उन्हें मेरुदण्ड में नीचे-ऊपर मूलाधार से आज्ञा चक्र तक घुमाइये। श्वास की लय के साथ मन्त्र का जप करते हुए आरोहण-अवरोहण करते जाइये। मेरुदण्ड आपका आध्यात्मिक सोपान है। आरोहण-अवरोहण करते जाइये। बाद में आप पायेंगे कि मेरुदण्ड में स्थित विभिन्न आध्यात्मिक केन्द्र स्पष्ट हो गये हैं। ये केन्द्र मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों को नियन्त्रित करते हैं। ये आध्यात्मिक सजगता की सर्वकुंजी हैं। अन्तत: यह मन्त्र आपको सीधे कुण्डलिनी के जागरण तक ले जाता है और आपको अपना स्वामी बना देता है।

योग की ज्योति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

बसंत पंचमी का सम्बन्ध इस आश्रम के साथ प्रारम्भ से योग के माध्यम से रहा है। 57 वर्ष पहले जब हमारे गुरुदेव, श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने मुंगेर आकर बिहार योग विद्यालय की स्थापना की थी, तब उनके मन में मात्र दो ही विचार थे – पहला कि योग प्रचार के गुरु-आदेश का पालन होना चाहिये, और दूसरा कि यह योग और यौगिक जीवनशैली का केन्द्र बने। इन दो विचारों ने बिहार योग विद्यालय की नींव रखी। गुरु का आदेश था कि योग का प्रचार पूरी दुनिया में करना है। गुरु की शिक्षा थी कि योग धर्म या मोक्ष या ईश्वर दर्शन के मार्ग के रूप में नहीं, बल्कि जीवन की प्रतिभाओं को विकसित करने के एक साधन के रूप में प्रचारित हो। मस्तिष्क, हृदय और हाथ की क्षमताओं का योग होना है और स्वामी शिवानन्द जी की इसी विचारधारा से प्रेरित होकर स्वामी सत्यानन्द जी ने मुंगेर से योग आन्दोलन का शंखनाद किया।

पचास वर्षों तक योग के प्रचार में बिहार योग विद्यालय ने उत्कृष्ट कार्य किया। इस काम में बहुतों का सहयोग रहा और पचास वर्षों में बिहार योग पद्धति दुनिया में एक महत्त्वपूर्ण योग पद्धति के रूप में प्रस्तुत हो गई। प्रचार होने के पश्चात् अब योग विद्या को और भी गहराई से आत्मसात् करने और अनुभव करने का अवसर मिला है। आज बच्चों की प्रस्तुति देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है, क्योंकि

पूर्व के स्थापना दिवसों में नगर और समाज के वरिष्ठ लोग यहाँ पर आकर बिहार योग विद्यालय को अपनी शुभकामना दिया करते थे, आकर बतलाते थे कि उनको योग से क्या फायदा हुआ। किसी का मधुमेह दूर हुआ, तो किसी का दमा दूर हुआ तो किसी का मोटापा कम हुआ। अपनी बीमारी की उपचार की कहानी और आश्रम के प्रति धन्यवाद देने की परम्परा यहाँ पर लोगों ने की थी। पचास साल तक वह अच्छा था, क्योंकि उससे मालूम पड़ता था कि किसको कितना फायदा हो रहा है, और उससे लोग आकर्षित भी होते थे कि इसको फायदा हुआ तो मुझे भी होगा। लेकिन इस साल बिहार योग विद्यालय के द्वारा अपने स्थापना दिवस पर समाज के लिये एक नया संदेश दिया जा रहा है। किसी संस्था और उस संस्था से जुड़े लोगों को अपने सामने एक लक्ष्य रखना बहुत आवश्यक है। उस लक्ष्य को लेकर जब हम साथ चलते हैं तो उपलब्धि भी होती है।

पिछले तीन दिनों से यहाँ पर प्रतिदिन ललिता महासमाजम् से आई योगिनियों ने कुशलता के साथ अलग-अलग यज्ञ सम्पन्न किये। हो सकता है यज्ञ को देखने से कुछ लोगों को लगा हो कि यह धार्मिक कर्मकाण्ड है। लेकिन यह तो उसका एक बहिरंग पक्ष हुआ। उसका एक अन्तरंग पक्ष भी होता है, एक भौतिक, सामाजिक पक्ष भी होता है और एक योग का पक्ष भी होता है। अन्तरंग पक्ष क्या है? आन्तरिक चंचलता को शान्त करके मन में शान्ति की स्थापना होती है, आन्तरिक वातावरण में परिवर्तन होता है। सामाजिक पक्ष में क्या होता है? यज्ञ में औषधियाँ अर्पित की जाती हैं और ये औषधियाँ उपचारात्मक हैं। ये पर्यावरण के प्रदूषण को दूर करती हैं, और हमारे शरीर के भीतर जो हानिकारक रोगाणु एवं कीटाणु हैं, उनको भी समाप्त करती हैं। इस तरह यह स्वास्थ्य के लिये भी अच्छा है और वातावरण के लिये भी। तीसरा है यौगिक पक्ष, जो जीवन को प्राकृतिक तथा ईश्वर आश्रित बनाता है, और यह आज समाज की आवश्यकता है।

बच्चों की पर्यावरण पर जो प्रस्तुति रही उसे देखकर बहुत अच्छा लगा। योग के द्वितीय अध्याय के क्षेत्र में अब बच्चे भी केवल रोग उपचार की बात नहीं कर रहे हैं, बल्कि एक सद्विचार को अपने जीवन में धारण करके उससे होने वाले लाभ की चर्चा कर रहे हैं। यह तो बहुत उत्तम है कि व्यक्ति अपने आपको संभालने और सुधारने का एक सजग, सकारात्मक प्रयत्न करे। अगर हम एक सद्विचार को, एक सद्व्यवहार को, एक अच्छे चिंतन को अपने भीतर धारण करें तो जीवन में निश्चित रूप से संयम और संतुलन की प्राप्ति होती है। यह आजमाया हुआ तरीका है।

आने वाले समय में बिहार योग विद्यालय का प्रयास होगा कि यह मात्र योग का केन्द्र नहीं रहे, बल्कि जीवन में योग संस्कारों को लाने का, योग जीवनशैली को आत्मसात् कराने का एक केन्द्र भी रहे। उसके लिये बच्चों का आज का जो विषय था वह बहुत ही प्रासंगिक है। हम अपने भीतर, अपने शरीर एवं मन में शुद्धता और

पवित्रता चाहते हैं, लेकिन जो हम अपने भीतर चाहते हैं वह हमारे बाहर भी होना चाहिये। शुचिता और पवित्रता हर व्यक्ति की खोज है और यह राजयोग का पहला नियम भी है। जब व्यक्ति अपने जीवन के प्रति, अपने मन के प्रति सजग बनता है तो सबसे पहले अपने जीवन में, अपने विचार और व्यवहार में पवित्रता लाने का प्रयत्न करता है। इसीलिये शुचिता या शौच को राजयोग का पहला नियम बतलाया गया। यहाँ पर तुम अपने मन के प्रति सजग हो रहे हो, इसलिये मन के व्यवहार को पहले पवित्र बनाओ, विचारों, आदतों और स्वभाव को ठीक करो, सकारात्मक करो, रचनात्मक करो, प्रतिभायुक्त करो। जो लोग योग की इस संस्कृति, संस्कार और विद्या से जुड़ रहे हैं, वे इस कार्य को भविष्य में बढ़ा पायेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है और इसकी छाप हमें अपने बच्चों में दिखलाई दे रही है। बड़े लोग प्रयास करते हैं स्वयं को तनावमुक्त बनाने के लिए और उनका यह प्रयास सराहनीय भी है, लेकिन बच्चों को योग मार्ग में आगे बढ़ने का अवसर इसलिए मिलना चाहिये ताकि वे एक यौगिक विचारधारा को अपने जीवन में आत्मसात् कर सकें।

बसंत पंचमी के इस पावन दिवस पर जब गुरुदेव ने यहाँ पर योग की अखण्ड ज्योति जलाई थी, उस क्षण का स्मरण करते हुये आज मुंगेर को योग नगरी के रूप में देखकर बहुत हर्ष और संतोष का अनुभव होता है। हम यही प्रार्थना करते हैं कि योग की ज्योति यहाँ पर हमेशा जलती रहेगी ताकि लोग इसके प्रकाश में अपने मार्ग पर आगे बढ़ते रहें। साथ ही यह आशा करते हैं कि आप सबका सहयोग और स्नेह इस संस्था को मिलता रहे, तब जाकर हमलोग अपनी गुरु परम्परा के दृष्टिकोण को जीवन में उतार पायेंगे। उसके लिये केवल स्वामी निरंजन नहीं, आप सबकी भी आवश्यकता है। इस बसंत पंचमी पर आप लोग भी सरलता, सहजता और पवित्रता की एक यौगिक विचारधारा को अपने जीवन में धारण करने का संकल्प लीजिये।

– 30 जनवरी 2020, बसंत पंचमी, गंगा दर्शन

यौगिक पर्यावरण और जीवनशैली

बाल योग मित्र मण्डल की ओर से संदेश

आज पूरे विश्व में शीत व उष्ण लहरों, भूकंपों, ज्वालामुखी विस्फोटों, भीषण अग्निकाण्डों की विभीषिकाओं, बाढ़ और सूखे के प्रकोप से प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ चुका है। वर्ष 2019 पूरे विश्व में अब तक का सबसे गर्म वर्ष रहा। पृथ्वी बुरी तरह झुलस रही है। अमेज़ॉन, ऑस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया और साइबेरिया के वन्य क्षेत्रों के बड़े भाग एवं अमेरिका के शहर व कस्बे गर्मी से झुलसते रहे हैं। लगता है यह ग्रह अग्नि में घिरा हुआ है।

ऑस्ट्रेलिया ऐसी अविश्वसनीय भीषण अग्नि की चपेट में आया कि स्वयं ऑस्ट्रेलिया व पूरा विश्व इस स्तब्ध कर देने वाले काण्ड से हतप्रभ रह गया। करोड़ों हेक्टेयर वन्यक्षेत्र अग्नि काण्ड की ऐसी भीषण त्रासदी के शिकार हो गये, जैसी पहले कभी देखी नहीं गई थी। ऑस्ट्रेलिया-वासियों को अपनी इस त्रासदीयुक्त धरती को, घरों को और व्यवसायों को पुन: व्यवस्थित करने में अनेक वर्ष लग जायेंगे तथा अरबों डॉलर भी खर्च होंगे, इसके बावजूद भी हम इस अग्नि विनाश लीला के शिकार हुए वन्य पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों तथा पर्यावरण को पुन: उस रूप में प्राप्त नहीं कर पायेंगे, जो इस अग्नि की भेंट चढ़ गया।

ऑस्ट्रेलिया के वन्य क्षेत्रों के इन अग्निकाण्डों का कारण केवल सूखा व गर्म लहरें नहीं हैं, और ये अग्निकाण्ड केवल ऑस्ट्रेलिया को प्रभावित नहीं कर रहे हैं, बल्कि पूरे पृथ्वी ग्रह की जलवायु को बदलने के लिए उत्तरदायी बन रहे हैं। इस अग्नि से बहुत अधिक मात्रा में निकले धुँए तथा वन्य क्षेत्रों और सम्पूर्ण प्राणी जगत् के विनाश ने पूरे पृथ्वी ग्रह के पर्यावरण तथा सन्तुलन को प्रभावित किया है। वास्तव में हम सब एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

जैसे-जैसे पृथ्वी पर समुद्र और धरती गर्म होते हैं, वैसे-वैसे प्रत्येक स्थान पर जलवायु और मौसम अविश्वसनीय रूप से अधिक उग्र होते जाते हैं। ऑस्ट्रेलिया अग्निग्रस्त हो गया, इंग्लैण्ड में बाढ़ आ गयी, कनाडा ठण्ढ से जम गया, कहाँ तक कहा जाए, प्रत्येक शहर के पास अपने क्षेत्र के उग्र होते मौसम की एक अलग ही कहानी है। मीथेन, कार्बन-डाईऑक्साइड, कार्बन-मोनो ऑक्साइड, नाईट्रस ऑक्साइड और वाष्प आदि की अधिकता भी हमारी जलवायु के बदलाव के मुख्य कारण हैं।

इसमें कोई शंका नहीं कि पृथ्वी ग्रह पर नकारात्मक परिवर्तन आ रहा है। अपने चारों ओर दृष्टि डालें तो समाज की भौतिकता का विनाशक प्रभाव इस पृथ्वी पर स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ने लगता है। दूषित वातावरण, प्लास्टिक, समुद्रों व जल

स्रोतों में पड़ा रासायनिक कचरा, भोज्य पदार्थों का कचरा, सामान्य कचरा, वनों का क्षयीकरण, मरुस्थलों का विस्तार, अत्यधिक जनसंख्या, आदि इनमें प्रमुख हैं।

पूरा विश्व इन पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं और जलवायु सम्बन्धी विभीषिकाओं के निवारण के उपाय की खोज में स्वयं को असहाय महसूस कर रहा है। लेकिन हमारा मानना है कि प्रत्येक समस्या का समाधान अवश्य होता है। इसलिए यदि लोगों को, समाज को सही तरीके से उत्साहित और निर्देशित किया जाए, तो बदलाव की संभावना सदा बनी रहती है।

इस दिशा में त्वरित क्रियान्वयन की आवश्यकता है तथा ऐसे नायक की आवश्यकता है, जो लोगों को अपने चारों ओर बिखरे पर्यावरण रूपी अनमोल खजाने तथा ममतामयी प्रकृति का सम्मान करते हुए, सादगीपूर्ण और सन्तुलित जीवन जीने की प्रेरणा और मार्गदर्शन दे सके। हमें इस दिशा में अवश्यमेव एक अलग ढंग से विचार करना और जीना होगा। अब पुराने भौतिकवादी तरीके और महत्त्वाकांक्षाएँ अधिक समय तक समाज और इस पृथ्वी ग्रह के सहायक नहीं बने रह सकते।

हमारा दायित्व – एक यौगिक जीवनशैली

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती कहते हैं, 'आपका प्रयास होना चाहिये – मैं योगमय जीवन कैसे जीऊँ और हर छोटे-बड़े कार्य में इसकी अभिव्यक्ति किस प्रकार करूँ। इसके लिये आपको अपनी इस सोच को बदलना होगा कि योग केवल कक्षा में किया जाने वाला अभ्यास है। यह तो एक ऐसा अभ्यास है जिसे क्षण-प्रतिक्षण किया जाना चाहिये।'

यौगिक पर्यावरण हमारे मन, भावना और कर्म का प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करता है। यह हमें हमारे स्रोत से, हमारी जननी से पुन: जोड़ता है और हमारे जीवन को श्रेष्ठ बनाता है। हम दूसरों को दोषी ठहरा सकते हैं, घोर नैराश्य में डूब जा सकते हैं, उलझन और निराशा का बहाना बना सकते हैं और अपने चारों ओर फैले इस संसार को अनदेखा कर सकते हैं। या फिर हम सब मिलकर कुछ उपाय सोच सकते हैं। योग पर्यावरण विज्ञान हमें इस सम्बन्ध में एक नयी दिशा, युक्ति, उपकरण, संभावना, समझ और जीवनशैली प्रदान करता है।

हम जिस प्रकार योग का उपयोग अपने आंतरिक असन्तुलन को दूर करने के लिए करते हैं, उसी प्रकार हमें यौगिक पर्यावरण की शिक्षाओं का उपयोग अपने ग्रह के असन्तुलनों को दूर करने के लिए करना चाहिए। यह हमारा वैयक्तिक और सामूहिक मानव धर्म है कि हम एक ऐसा परिवर्तन लायें, जिससे प्रकृति को पुन: अपना भरपूर सौन्दर्य प्राप्त करने का समय और संभावना उपलब्ध हो जाए। स्वामी निरंजनानन्द जी कहते हैं, 'योग का एक सरल सिद्धान्त है कि हम प्रकृति के

नियमों के अनुसार अपना जीवन जीयें, ऐसा करने पर अस्वस्थ होने की संभावना ही समाप्त हो जायेगी। योग का उद्देश्य केवल एक है – मनुष्य को जीवन की पूजा करना सिखाना।

प्रकृति के प्रति सम्मान

स्वामी निरंजनानन्द जी के अनुसार, 'भौतिक और आध्यात्मिक जीवन में कोई अन्तर नहीं हैं। हम लोग यहीं गलती कर बैठते हैं। अगर हम यह मानें कि हमारा आध्यात्मिक जीवन ही हमारा दैनिक जीवन है और हमारा दैनिक जीवन ही हमारा आध्यात्मिक जीवन है, तो कोई उलझन नहीं रहेगी।' आप अपने जीवन में निम्नांकित सरल, सहज बदलाव ला सकें तो बहुत बड़ा परिवर्तन हो सकता है।

अपने कार्बन उत्पादन को कम करें – अपनी कार, विद्युत, तेल और गैस का उपयोग कम करें। जब विद्युत बल्ब और अन्य विद्युत उपकरण उपयोग में न आ रहे हों तब उन्हें बन्द कर दें। प्राकृतिक सम्पदाओं का उपयोग करते समय सजग रहें और प्लास्टिक का उपयोग कम करें। न्यूनतम आवश्यकताओं के साथ सरल जीवन जीएँ। इसे अपने जीवन का आधार बनाएँ। मजबूत बनें और उस उपभोक्ता समाज से दूर रहें, जिसने आपको चारों ओर से घेर रखा है और जो आपको अपने में निमग्न कर लेता है।

सावधानीपूर्वक आहार ग्रहण करें – मांसाहार छोड़ दें। पशुओं की चराई ने पूरे विश्व के स्वरूप को बदल दिया है, जंगलों की कटाई, मरुस्थलीकरण, पानी का अत्यधिक उपयोग और उसका प्रदूषण हो रहा है। हम लोग बिना मांस के रह सकते हैं। हमें केवल सही चुनाव करना है। अपनी सब्जी स्वयं उपजाएँ, बाग

लगाएँ, शहरों में भी सब्जी उपजाना संभव है। प्राकृतिक आहार ग्रहण करें, जो मौसमी हो और जहाँ आप रहते हैं वहीं उपजाया गया हो।

जल बचाएँ – इस कीमती जल का सम्मान करें जो जीवन का संरक्षण करता है। इसके बिना हमारा जीवन समाप्त हो जाएगा। उपयोग में लायी जाने वाली हर बूंद के प्रति जागरूक रहें और अपने बगीचे में जो जल सींचते हैं, उसके दुरुपयोग के प्रति भी जागरूक रहें।

वृक्ष लगाएँ – जब कभी और जहाँ कहीं संभव हो, कम-से-कम 100 वृक्ष किसी बगीचे में अथवा बाहर लगाएँ। अपने जन्मदिन पर अथवा किसी त्यौहार या शुभ अवसर पर भी लोगों को वृक्ष भेंट करें। पेड़-पौधे जीवन के लिए उपहार स्वरूप होते हैं। वृक्ष जल, वायु तथा भूमि को शुद्ध करते हैं। वृक्ष हमें ऑक्सीजन और आहार प्रदान करते हैं, जो जीवन के लिए उपयोगी हैं, और कार्बन-डाईऑक्साइड को सोख कर उसे वातावरण से बाहर कर देते हैं।

प्रकृति से पुन: जुड़ें – प्रकृति हमारा जीवन है और हमारा अस्तित्व भी। हम लोग प्रकृति ही हैं। जीवन और प्रकृति के सभी पहलुओं की पूजा करें। स्वामी शिवानन्द जी कहते थे, 'फूलों और हरी घास के साथ हँसो। पक्षियों और हिरण के साथ खेलो। टहनियों और पत्तों से मिलो। इन्द्रधनुष, वायु, चाँद-सितारों या सूर्य से बातें करो। नदियों और समुद्र की लहरों के साथ बातें करो। अपने आस-पास अपने सभी पड़ोसियों, कुत्तों, बिल्लियों, गायों, वृक्षों और फूलों से मित्रता स्थापित करो। तब आपका जीवन व्यापक और पूर्ण बनेगा।'

योग को जीओ

अब हम कुछ योगाभ्यास बता रहे हैं जिन्हें आप कुछ ही क्षणों में कर सकते हैं और अपने दैनिक जीवन का अंग बना सकते हैं। याद रहे कि लम्बे समय तक नियमितता के साथ किया गया अभ्यास ही अपने अन्दर और बाहर परिवर्तन लाने की कुंजी है।

1. सुबह जल्दी उठें और सूर्योदय देखने का प्रयास करें। सूर्योदय की नियमित लय के साथ अपने को एकाकार करने का अभ्यास करें और यह आपकी दिनचर्या का हिस्सा बन जाए।
2. सुबह अपने अन्दर और बाहर शान्ति की परिकल्पना करते हुए सामवेद के शान्ति मन्त्र का पाठ करें।
   ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु सकलारिष्टसुशान्तिर्भवतु सर्वे ग्रहाः सुशान्तिर्भवतु॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥
   अर्थात् स्वर्ग में शान्ति हो, अन्तरिक्ष में शान्ति हो, पृथ्वी पर शान्ति हो, जल में शान्ति हो, ओषधियों-वनस्पतियों में शान्ति हो। दसों दिशाओं में शान्ति हो! ब्रह्म शान्त हों! सर्वत्र शान्ति हो। मुझमें शान्ति हो। सिर्फ शान्ति ही शान्ति हो। शान्ति और मंगल हो! सारी दुर्दशाएँ और क्लेश शान्त हों। सारे ग्रह शान्त हों।
3. अपने शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिये प्रतिदिन 15 मिनट आसनों का अभ्यास करें, ताकि आप अपने को दूसरों की सेवा और पूरे संसार एवं हम

सबके भविष्य के हित के लिये समर्पित कर सकें। आप केवल सूर्य नमस्कार की कुछ आवृत्तियाँ करें या ताड़ासन, तिर्यक् ताड़ासन, कटि चक्रासन, विपरीतकरणी आसन और एकपाद प्रणामासन के समूह का अभ्यास करें। या फिर रोज पवनमुक्तासन भाग 1 और 2 का अभ्यास करें। नियमितता से आपको लाभ मिलेगा न कि अभ्यासों की अधिकता से।

4. दिनभर में जितनी बार हो सके, अपनी सामान्य श्वास-प्रश्वास के प्रति सजग बनें और अधिक लम्बी एवं गहरी श्वास लें। श्वास की सजगता का उपयोग अपने श्वसन को उत्तम बनाने और अपने आस-पास हो रही भाग-दौड़ के तनाव से अपने को मुक्त रखने के लिये करें।
5. 'क्या मुझे इसकी आवश्कयता है', 'क्या मुझे यह चहिये', इस सजगता को सारे दिन जीवन के सभी क्षेत्रों में बनाये रखें। चाहे वह भौतिक हो, सामाजिक हो, मानसिक हो या भावनात्मक। क्या मुझे 30 जोड़ी जूतों की आवश्यकता है? क्या मुझे हर पाँच मिनट में अपने फेसबुक या ट्विटर एकाऊंट को देखने की आवश्यकता है? क्या मुझे नकारात्मक विचारों की आवश्यकता है? क्या सही में मुझे ईर्ष्या, दु:ख या क्रोध की आवश्यकता है? स्वामी निरंजनानन्द जी कहते हैं, 'आप अपने मन में जो जीते हैं वही आपका वास्तविक जीवन है। आपकी जीवनशैली आपके मन के गुणों की अभिव्यक्ति है।'

अपने प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा के लिये बाद में समय नहीं बचेगा। हो सकता है बहुत देर हो चुकी हो। पर हम अपना प्रयत्न तो कर ही सकते हैं। एक अलग तरह का जीवन जीने का साहस रखो और आवश्यकता पड़ने पर अकेले आगे बढ़ो। औरों को ऐसा जीवन जीने के लिये प्रेरित करो जो योग और प्रकृति के भाव से प्रेरित हो और जिसमें समस्त प्राणियों के प्रति आदर हो। इसी क्षण ऐसा करो। गौरव के साथ योग को जीओ और कभी हार मत मानो। स्वामी निरंजनानन्द जी के शब्दों में, 'जब आप योग के सिद्धान्तों को अपने जीवन में उतारते हैं तब योग जीवनशैली का अंग बनता है। यह आपके आचारण और व्यवहार में झलकता है। ऐसा अनुशासित व्यक्ति स्वयं को एवं अपने परिवार, समाज, देश और पूरे विश्व को लाभान्वित करता है।'

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

शिवं सत्यं सुन्दरम्

पृष्ठ 173, ISBN: 978-81-943598-8-3

एक आदर्श गुरु, स्वामी शिवानन्द सरस्वती और उनके आदर्श शिष्य, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के अनुपम संबंध का दिग्दर्शन कराने वाला यह श्रद्धांजलि संग्रह उनके एक-दूसरे के प्रति प्रेरक उद्गारों का संकलन है।

जिन्हें भी यह पुस्तक देखने और पढ़ने का सुयोग प्राप्त हो, उन्हें गुरु-शिष्य के बीच प्रेम, श्रद्धा, समर्पण, विश्वास और एकता का वह अदृश्य बन्धन दृष्टिगोचर हो जाए जो उन्हें पूर्ण बनाकर ईश्वर के हाथों का पुनीत निमित्त बना देता है।

– स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

स्वामी सत्यानन्द जी एवं स्वामी निरंजनानन्द जी की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *www.satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

बिहार योग विकी

www.yogawiki.org ऑनलाइन विश्वकोश है जहाँ बिहार योग पद्धति की शिक्षाएँ सुगम रूप में उपलब्ध हैं।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st–7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

आत्मस्वरूप

हरि: ॐ

देशभर में फैली कोरोनावायरस महामारी और उसके परिणामस्वरूप चल रहे लॉकडाउन के कारण बिहार योग विद्यालय, मुंगेर अप्रैल 2020 अंक के बाद योगा एवं योगविद्या पत्रिकाओं का मुद्रण एवं डाक द्वारा प्रेषण नहीं कर पाया है।

वर्तमान अंक के साथ-साथ इन पत्रिकाओं के सभी पूर्व अंक Bihar Yoga, Satyam Yoga Prasad एवं YOGA/Yoga Vidya magazine एप्प पर तथा www.biharyoga.net एवं www.satyamyogaprasad.net वेबसाइट पर नि:शुल्क उपलब्ध हैं।

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाओं के ग्राहकों को परिस्थिति सामान्य होने पर पुराने अंक डाक द्वारा प्रेषित कर दिए जाएँगे।

इस बीच satyamyogaprasad.net पर अपलोड की गई नई पुस्तकों तथा ऑडियो एवं वीडियो रिकॉर्डिंग देखना न भूलें। इस विशेष समय का उपयोग आध्यात्मिक ज्ञान की नई-पुरानी निधियाँ खोजने तथा क्षण-प्रतिक्षण योग जीने में करें।

बिहार योग विद्यालय के Android एवं iOS उपकरणों पर उपलब्ध एप्प :

बिहार योग पत्रिकाएँ:	Yoga (अंग्रेज़ी) एवं Yoga Vidya (हिन्दी)
बिहार योग प्रकाशन:	Satyam Yoga Prasad
बिहार योग शैक्षणिक:	Bihar Yoga
	Asana Pranayama Mudra Bandha
बिहार योग जीवनशैली:	Yoga Lifestyle Program
	For Frontline Heroes

आपके स्वास्थ्य, कल्याण और शांति के लिए श्री स्वामी सत्यानन्द जी के आशीर्वाद सहित,

ॐ तत्सत्

सम्पादक